चंदामामा की कहानियाँ

स्निग्धा कुमारी

चंदामामा की कहानियाँ

स्निग्धा कुमारी

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

अपनी बात

भारतीय संस्कृति में कहानियों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। बच्चों में संस्कार, नीति, व्यवहार आदि की शिक्षा का माध्यम यही कहानियाँ रही हैं। नाना-नानी, दादा-दादी से सुनी गई कहानियों ने पाठकों के मन-मस्तिष्क पर हमेशा अपना प्रभाव बनाए रखा है। पंचतंत्र, जातक, हितोपदेश जैसे महान् ग्रंथों की कथाएँ आज भी बाल पाठकों की पहली पसंद बनी हुई हैं। इसी श्रृंखला में हमने 'चंदामामा की कहानियाँ' में अनेक ऐसी कहानियों को संगृहीत करने का प्रयास किया है, जिनके माध्यम से बाल पाठकों में संस्कार और शिक्षा के बीज अवश्य अंकुरित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक को सुंदर चित्रों एवं सरल भाषा द्वारा उपयोगी एवं रोचक बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। आशा है, चंदामामा की ये अद्‍भुत कहानियाँ पाठकों को पसंद आएँगी।

—प्रकाशक

चोरी का दंड

बात सत्य-युग की है। उस समय हिमालय की तलहटी में महर्षि कण्व आश्रम बना कर रहते थे। आश्रम एक मनोरम स्थान पर था। पर्वतराज हिमालय से निकली अनेक जलधाराएँ उनके आश्रम के निकट से बहती थीं। यहीं वे आपस में मिलकर एक विशाल नदी का रूप ले लेती थीं। आश्रम के आस-पास फल वाले वृक्षों की भरमार थी, जिससे आश्रमवासियों को पूरे वर्ष स्वादिष्ट फल खाने को मिलते रहते थे। उस आश्रम में सैकड़ों विद्यार्थी रहकर वेद-शात्रों का अध्ययन किया करते थे।

महर्षि कण्व अपनी तपस्या के लिए तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे। स्वयं देवराज इंद्र भी उनके आश्रम में सोमरस का पान कर चुके थे। सबकुछ ठीक-ठाक ढंग से चल रहा था। वेद-मंत्रों की ध्वनि से गुंजायमान वहाँ का वातावरण सभी के लिए सुखमय था, पर एक दिन एक ऐसा विघ्न उत्पन्न हो गया, जिससे आश्रम में खलबली म" गई।

हुआ यह कि रोज की तरह उस दिन भी गाएँ जंगल से चरकर आश्रम में लौटीं। संध्या के समय उनका दूध दुहा गया। दूध से रोज जितने बरतन भरते थे, उस दिन नहीं भरे। यह देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। आश्रमवासी सोचने लगे, 'आखिर यह हुआ कैसे?' गाएँ दुधारू थीं। जंगल में चरने के लिए खूब हरी-हरी घास थी। वे भूखी नहीं रह सकती थीं। उनकी देखभाल करने वाले ब्रह्मचारी भी संख्या में काफी थे। हाथों में मजबूत डंडे लिये वे पूरी सावधानी से गाएँ चराते थे। जंगल हिंसक पशुओं से भरा था। किंतु किसी की क्या मजाल कि आश्रम की एक भी गाय पर हमला करें। महर्षि कण्व के तप का इतना प्रभाव था कि कोई दस्यु या दैत्य भी वहाँ आकर कोई उपद्रव नहीं कर सकता था।

दूसरे दिन जो ब्रह्मचारी ग्वाले गाएँ चराने गए, उन्होंने उस दिन पूरी मुस्तैदी के साथ गायों की देखभाल की। वे गायों को चराने के लिए ऐसी घाटी में ले गए, जहाँ घास के साथ-साथ अनेक गुणकारी वनस्पतियाँ भी उगी हुई थीं। गाएँ चरकर पानी पीने के लिए एक ताल के पास गइऔ, फिर वृक्षों की घनी छाया में बैठकर सुस्ताने लगीं। ग्वाले भी निश्चिंत होकर एक ऊँचे टीले पर बैठ गए। गोधूलि वेला आई तो गाएँ आश्रम की ओर लौट चलीं। फिर उनका दूध दुहा गया, मगर दूध आज भी कम था।

यह देखकर गाएँ चराने गए ब्रह्मचारी परेशान हो गए। गायों के साथ गए एक ब्रह्मचारी धौम्य ने अपने साथी सुंत से पूछा, "यह क्या हो रहा है? आज तो ग्वालों का मुखिया मैं ही था। गायों ने पेट भरकर घास खाई थी। फिर इन्होंने दूध कम क्यों दिया? ये बीमार भी नजर नहीं आतीं। पशु-विशेषज्ञ आचार्य सोम ने आज प्रातः ही इनका परीक्षण किया था। इसमें क्या रहस्य हो सकता है?"

"कुछ तो है ही।" सुंत बोला, "अभी बात महर्षि कण्व तक नहीं पहुँची है। वे सुनेंगे तो उन्हें दुख होगा। वे आश्रम के हर प्राणी को पिता समान प्यार देते हैं। गायों को तो वह अपनी माता समझते हैं। हमें खोज करनी चाहिए कि आखिर गाएँ दूध कम क्यों दे रही हैं?" कहते-कहते सुंत के चेहरे पर चिंता की लकीरें उभर आइऔ।

अगले दिन गाएँ देर से चरने के लिए गइऔ। जाने से पहले उनका निरीक्षण किया गया। उनके ऊपर यज्ञ की भस्मी का लेप लगाया गया, ताकि कोई बुरी बाधा उनके पास न फटक सके। आज ग्वालों का मुखिया सुंत था। आचार्य सुंत को सामवेद का प्रमुख गायक माना जाता था। गौरवर्ण, सुपुष्ट शरीरवाला सुंत महर्षि कण्व का प्रिय शिष्य था। वह कई विद्याओं का जानकार था। मंत्र-दृष्टा ऋषियों की श्रेणी में उसका नाम आ चुका था। फिर भी वह इस आश्रम का विद्यार्थी ही था। उसे विद्यार्थी बना रहना रुचिकर लगता था, क्योंकि इस प्रकार उसे गुरु-चरणों के स्पर्श का सुख मिलता था।

गाएँ जंगल में चरते-चरते काफी दूर निकल आई थीं। गरमी का मौसम था। "ना जंगल होने के कारण धूप उतनी तप नहीं रही थी, फिर भी गरमी की तपिश दोपहर तक काफी बढ़ गई। गाएँ एक जलाशय के पास आइऔ। रोज ही वे यहाँ आकर जल पिया करती थीं। फिर जल पीकर वृक्षों की ठंडी छाया में बैठकर आराम से जुगाली करती रहती थीं।

गाएँ बैठकर जुगाली करने लगीं। सुंत के साथी श्रीवत्स ने सुंत और अपने दूसरे साथियों से कहा, "चलो, हम लोग भी किसी वृक्ष की छाया में बैठकर कुछ खा-पी लें। गरमी काफी तेज है।"

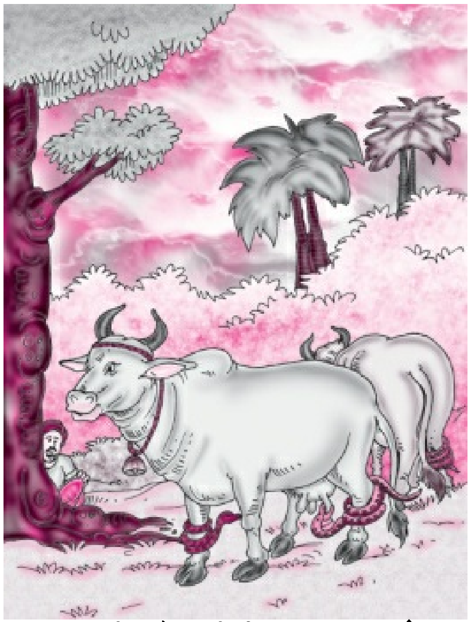

"नहीं। तुम लोग छाया में बैठकर आराम करो। मैं गायों के पास जाता हूँ।" सुंत बोला।

"मगर क्यों? गाएँ आराम से बैठी हैं। यहाँ से हमें दिखाई भी दे रही हैं? मुझे तो कोई खतरा नजर नहीं आ रहा। क्या सो" रहे हो तुम?" श्रीवत्स ने पूछा।

कुछ नहीं, बस यूँ ही।" कहकर सुंत ने अपना डंडा उठाया और गायों की ओर चल दिया।

जैसे ही वह गायों के समीप पहुँचा, एक विस्मयकारी दृश्य देखकर चौंक उठा। वह एक वृक्ष की आड़ में छिपकर उस विचित्र दृश्य को देखने लगा। उसने देखा-जलाशय के आस-पास उगी झाड़ियों में से बहुत से विषैले नाग बाहर निकले और गायों के थनों से अपना मुँह लगाकर दूध पीने लगे। उन्हें देखकर गाएँ इतनी भयभीत हो गइऔ कि वे बिना हिले-डुले चुपचाप बैठी रहीं। नाग उनका दूध पीते रहे।

यह देखकर सुंत की भौंहें तन गइऔ, मगर फिर उसने क्रोध पर काबू पा लिया। वह सोचने लगा, 'इन सर्पों से इस तरह निपटना ठीक नहीं। निश्चय ही ये नाग नाग न होकर कोई और ही हैं। महर्षि कण्व ही इनके दंड की उचित व्यवस्था करेंगे।' इसके बाद सुंत ने अपने साथियों को बुलाकर उन्हें भी वह दृश्य दिखलाया। गायों के रक्षकों की आवाजें सुनकर सर्प भी डर गए और तुंत दूध पीना छोड़कर झाड़ियों में जा छिपे।

उस दिन साँझ होने से पहले ही गाएँ आश्रम में लौट आइऔ। सुवंत और उसके साथियों ने आँखों देखी घटना सभी को बताई। सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गए। इससे गायों के दूध में कमी आने के रहस्य का तो पता चल गया, किंतु यह बात किसी की समझ में नहीं आई कि सर्पों को दूध पीने का यह शौक चढ़ा क्यों? गायों को कोई हानि पहुँचाए बिना ये लोभी सर्प दूध पीते रहे। चाहते तो गायों को डस भी सकते थे।

साँझ की हवन-संध्या पूरी हुई। महर्षि कण्व अपने आसन पर बैठे वेद-मंत्रों के तत्त्व की बातें बता रहे थे। कुछ

देर बाद रात का अँधियारा घिर आया। महर्षि भी अपनी कुटिया में जाने के लिए उठ खड़े हुए। तभी सुंत ने उठकर उनके चरण स्पर्श किए।

"क्या बात है, सुंत? कुछ कहना चाहते हो?" महर्षि कण्व ने पूछा।

"हाँ, गुरुदेव।" सुंत ने कहा और फिर उसने गायों के दूध में कमी आने और सर्पों द्वारा गायों का दूध पीने की बात विस्तार से महर्षि को बता दी।

सुनकर महर्षि मौन हो गए। फिर बोले, "प्रात:काल मिलना।" इतना कहकर वह अपनी कुटिया में चले गए।

आज आश्रम में अजीब सी हलचल थी। गाएँ चरने के लिए जंगल में नहीं गई थीं। उनके लिए जंगल से चारा काटकर लाया गया था। आश्रम की यज्ञशाला के बाहर एक बड़ी सी यज्ञवेदी बनाई जा रही थी। फूस की ऊँची छत वेदी के चारों ओर बनाई गई थी। कुशा के आसन बिछे थे। शायद किसी विशेष यज्ञ का आयोजन होने वाला था।

तभी सुंत और धौम्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आश्रमवासियों से कहा, "दुष्ट नागों को दंड देने के लिए कल से एक विशेष यज्ञ होनेवाला है।" यह सुनकर जिज्ञासु शिष्य धीरे-धीरे अपनी-अपनी कुटिया में चले गए। धौम्य और सुंत भी यज्ञ-कार्य में व्यस्त हो गए।

अगले दिन सूरज की पहली किरण के साथ ही यज्ञशाला वेद-मंत्रों से गूँज उठी। महर्षि कण्व आचार्य के आसन पर विराजमान हो गए। दूसरे तपस्वी भी वहाँ आ पहुँचे और अपने-अपने स्थान पर आकर बैठ गए। नागों के आचरण से सभी दुखी थे। उन्हें दंड देने के लिए ही यज्ञ का आयोजन किया जा रहा था। अग्निदेव को प्रसन्न करना जरूरी था, ताकि वे प्रसन्न होकर उन नागों को अपनी ज्वाला से भस्म कर सकें।

मंत्रों का उच्चारण शुरू हुआ। एक के बाद एक आहुति प्रज्वलित अग्नि में गिरने लगीं। एक घंटा बीता, फिर दो घंटे। यज्ञ-कर्म में और भी तेजी आ गई। वहाँ उपस्थित जन-समुदाय प्रतीक्षा कर रहा था उस दंड का, जो नागों को मिलने वाला था।

आखिर प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुई। दोपहर का सूरज जैसे ही यज्ञवेदी की छत के ऊपर आया, फुसफुसाहट शुरू हो गई। सभी ने देखा-मणिधारी नागों का एक बहुत बड़ा समूह यज्ञ-वेदी से थोड़ी दूर आकर रुक गया। सभी नाग पंक्तिबद्ध थे। अपने-अपने फन ऊपर उठाकर वे बार-बार यज्ञ-वेदी को नमन कर रहे थे।

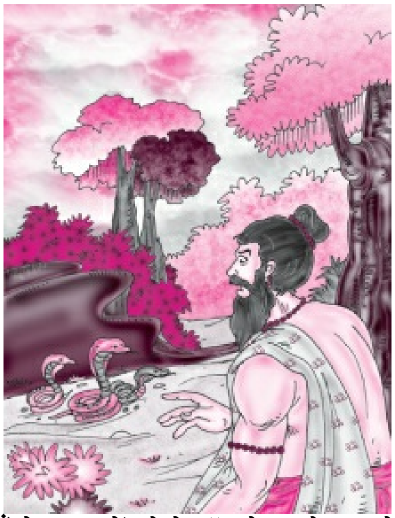

महर्षि कण्व ने यह सब देखा, वह ऊँचे स्वर में बोले, "अरे नागो, तुमने अपराध किया है। चोरी से आश्रम की गायों का दूध पिया है। तुम्हें दंड मिलेगा। अग्निदेव तुम्हें दंड देंगे। सिर्फ तुम ही नहीं, बल्कि तुम्हारी पूरी नाग जाति को इस यज्ञ कुंक्तड में भस्म होना पड़ेगा।"

“नहीं-नहीं ऋषिवर।” नाग चिल्लाए, “हमें क्षमा कर दीजिए। हमें इतना कठोर दंड मत दीजिए।”

“दुष्कर्म का दंड अगर न मिले तो दुष्कर्म और भी बढ़ता है।” महर्षि कण्व बोले।

“मगर तपस्वी का धर्म क्षमा है, मुनिवर। हम मान रहे हैं कि यह अपराध हमसे हुआ है, हम अपराधी हैं। अब कृपा करके यह यज्ञ रोक दीजिए। आपकी हर आहुति के साथ हमारे शरीर में जलन पैदा हो रही है। हम भस्म हो जाएँगे देव।” नाग गिड़गिड़ाए।

नागों की विनती सुनकर महर्षि कण्व कुछ देर के लिए सो” में पड़ गए। उन्होंने भय से काँपते हुए नागों की ओर देखा। उनकी वाणी में पश्चात्ताप था। वे अपनी गलती मान गए थे। महर्षि का दयालु हृदय पिघल उठा। यज्ञ की शेष आहुतियाँ रोक दी गइऔ।

यह देखकर सुंत ने कहा, “आचार्यश्री, इन नागों ने अपराध तो किया ही है, अतः इन्हें इसका दंड तो मिलना ही चाहिए।”

“मिलेगा। इन्हें इसका दंड अवश्य मिलेगा, सुंत।” आचार्य बोले, “दंड के बिना इनका प्रायश्चित्त पूरा नहीं होगा।”

महर्षि की बात सुनकर सभी की उत्सुक दृष्टि उनके चेहरे पर जम गई। नाग भी फन फैलाए इस प्रतीक्षा में थे कि देखें आचार्य उनके लिए कौन सा दंड निश्चित करते हैं।

महर्षि ने कहा, “अरे नागो! देवजाति के वंशधर होते हुए भी तुमने चोरी की। आज से तुम देव-जाति से अलग हो जाओगे। तुमने चोरी से आश्रम की गायों का दूध पिया, इसलिए अब से यही दूध तुम्हारी कमजोरी बन जाएगा। जो भी व्यक्ति तुम्हें दूध पिलाएगा, तुम उसी के वश में हो जाओगे। फिर भी लोग तुम्हारी जाति पर विश्वास नहीं करेंगे तथा अविश्वासी मनुष्य तुम्हारा उदाहरण बनेंगे।”

यह सुनकर नागों को बहुत दुख हुआ। मगर जो अपराध उन्होंने किया था, उसका दंड तो उन्हें भोगना ही था। वे सब चुपचाप वापस लौट गए। उसी दिन से साँपों को दूध पिलाया जाने लगा। उसी दिन से अविश्वासी व्यक्ति को ‘आस्तीन का साँप’ कहा जाता है। यह कहावत आज भी प्रसिद्ध है कि अविश्वासी व्यक्ति पर विश्वास करना साँपों को दूध पिलाने के समान है। आज भी नाग उस चोरी का दंड भुगत रहे हैं। कोई भी व्यक्ति उन पर विश्वास नहीं करता। सभी लोग उनसे भयभीत और सतर्क रहते हैं कि कहीं अवसर देखकर हमें डस न लें। बात सत्य-युग की है। उस समय हिमालय की तलहटी में महर्षि कण्व आश्रम बना कर रहते थे। आश्रम एक मनोरम स्थान पर था। पर्वतराज हिमालय से निकली अनेक जलधाराएँ उनके आश्रम के निकट से बहती थीं। यहीं वे आपस में मिलकर एक विशाल नदी का रूप ले लेती थीं। आश्रम के आस-पास फल वाले वृक्षों की भरमार थी, जिससे आश्रमवासियों को पूरे वर्ष स्वादिष्ट फल खाने को मिलते रहते थे। उस आश्रम में सैकड़ों विद्यार्थी रहकर वेद-शात्रों का अध्ययन किया करते थे।

महर्षि कण्व अपनी तपस्या के लिए तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे। स्वयं देवराज इंद्र भी उनके आश्रम में सोमरस का पान कर चुके थे। सबकुछ ठीक-ठाक ढंग से चल रहा था। वेद-मंत्रों की ध्वनि से गुंजायमान वहाँ का वातावरण सभी के लिए सुखमय था, पर एक दिन एक ऐसा विघ्न उत्पन्न हो गया, जिससे आश्रम में खलबली म” गई।

हुआ यह कि रोज की तरह उस दिन भी गाएँ जंगल से चरकर आश्रम में लौटीं। संध्या के समय उनका दूध दुहा गया। दूध से रोज जितने बरतन भरते थे, उस दिन नहीं भरे। यह देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। आश्रमवासी सोचने लगे, ‘आखिर यह हुआ कैसे?’ गाएँ दुधारू थीं। जंगल में चरने के लिए खूब हरी-हरी घास थी। वे भूखी नहीं रह सकती थीं। उनकी देखभाल करने वाले ब्रह्मचारी भी संख्या में काफी थे। हाथों में मजबूत डंडे लिये वे पूरी

सावधानी से गाएँ चराते थे। जंगल हिंसक पशुओं से भरा था। किंतु किसी की क्या मजाल कि आश्रम की एक भी गाय पर हमला करें। महर्षि कण्व के तप का इतना प्रभाव था कि कोई दस्यु या दैत्य भी वहाँ आकर कोई उपद्रव नहीं कर सकता था।

दूसरे दिन जो ब्रह्मचारी ग्वाले गाएँ चराने गए, उन्होंने उस दिन पूरी मुस्तैदी के साथ गायों की देखभाल की। वे गायों को चराने के लिए ऐसी घाटी में ले गए, जहाँ घास के साथ-साथ अनेक गुणकारी वनस्पतियाँ भी उगी हुई थीं। गाएँ चरकर पानी पीने के लिए एक ताल के पास गइऔ, फिर वृक्षों की घनी छाया में बैठकर सुस्ताने लगीं। ग्वाले भी निश्‍चिंत होकर एक ऊँचे टीले पर बैठ गए। गोधूलि वेला आई तो गाएँ आश्रम की ओर लौट चलीं। फिर उनका दूध दुहा गया, मगर दूध आज भी कम था।

यह देखकर गाएँ चराने गए ब्रह्मचारी परेशान हो गए। गायों के साथ गए एक ब्रह्मचारी धौम्य ने अपने साथी सुंत से पूछा, “यह क्या हो रहा है? आज तो ग्वालों का मुखिया मैं ही था। गायों ने पेट भरकर घास खाई थी। फिर इन्होंने दूध कम क्यों दिया? ये बीमार भी नजर नहीं आतीं। पशु-विशेषज्ञ आचार्य सोम ने आज प्रात: ही इनका परीक्षण किया था। इसमें क्या रहस्य हो सकता है?”

“कुछ तो है ही।” सुंत बोला, “अभी बात महर्षि कण्व तक नहीं पहुँची है। वे सुनेंगे तो उन्हें दुख होगा। वे आश्रम के हर प्राणी को पिता समान प्यार देते हैं। गायों को तो वह अपनी माता समझते हैं। हमें खोज करनी चाहिए कि आखिर गाएँ दूध कम क्यों दे रही हैं?” कहते-कहते सुंत के चेहरे पर चिंता की लकीरें उभर आइऔ।

अगले दिन गाएँ देर से चरने के लिए गइऔ। जाने से पहले उनका निरीक्षण किया गया। उनके ऊपर यज्ञ की भस्मी का लेप लगाया गया, ताकि कोई बुरी बाधा उनके पास न फटक सके। आज ग्वालों का मुखिया सुंत था। आचार्य सुंत को सामवेद का प्रमुख गायक माना जाता था। गौरवर्ण, सुपुष्ट शरीरवाला सुंत महर्षि कण्व का प्रिय शिष्य था। वह कई विद्याओं का जानकार था। मंत्र-दृष्टा ऋषियों की श्रेणी में उसका नाम आ चुका था। फिर भी वह इस आश्रम का विद्यार्थी ही था। उसे विद्यार्थी बना रहना रुचिकर लगता था, क्योंकि इस प्रकार उसे गुरु-चरणों के स्पर्श का सुख मिलता था।

गाएँ जंगल में चरते-चरते काफी दूर निकल आई थीं। गरमी का मौसम था। घना जंगल होने के कारण धूप उतनी तप नहीं रही थी, फिर भी गरमी की तपिश दोपहर तक काफी बढ़ गई। गाएँ एक जलाशय के पास आइऔ। रोज ही वे यहाँ आकर जल पिया करती थीं। फिर जल पीकर वृक्षों की ठंडी छाया में बैठकर आराम से जुगाली करती रहती थीं।

गाएँ बैठकर जुगाली करने लगीं। सुंत के साथी श्रीवत्स ने सुंत और अपने दूसरे साथियों से कहा, “चलो, हम लोग भी किसी वृक्ष की छाया में बैठकर कुछ खा-पी लें। गरमी काफी तेज है।”

“नहीं। तुम लोग छाया में बैठकर आराम करो। मैं गायों के पास जाता हूँ।” सुंत बोला।

“मगर क्यों? गाएँ आराम से बैठी हैं। यहाँ से हमें दिखाई भी दे रही हैं? मुझे तो कोई खतरा नजर नहीं आ रहा। क्या सो” रहे हो तुम?” श्रीवत्स ने पूछा।

“कुछ नहीं, बस यूँ ही।” कहकर सुंत ने अपना डंडा उठाया और गायों की ओर चल दिया।

जैसे ही वह गायों के समीप पहुँचा, एक विस्मयकारी दृश्य देखकर चौंक उठा। वह एक वृक्ष की आड़ में छिपकर उस विचित्र दृश्य को देखने लगा। उसने देखा-जलाशय के आस-पास उगी झाड़ियों में से बहुत से विषैले नाग बाहर निकले और गायों के थनों से अपना मुँह लगाकर दूध पीने लगे। उन्हें देखकर गाएँ इतनी भयभीत हो गइऔ कि वे बिना हिले-डुले चुपचाप बैठी रहीं। नाग उनका दूध पीते रहे।

यह देखकर सुंत की भौंहें तन गइऔ, मगर फिर उसने क्रोध पर काबू पा लिया। वह सोचने लगा, 'इन सर्पों से इस तरह निपटना ठीक नहीं। निश्चय ही ये नाग नाग न होकर कोई और ही हैं। महर्षि कण्व ही इनके दंड की उचित व्यवस्था करेंगे।' इसके बाद सुंत ने अपने साथियों को बुलाकर उन्हें भी वह दृश्य दिखलाया। गायों के रक्षकों की आवाजें सुनकर सर्प भी डर गए और तुंत दूध पीना छोड़कर झाड़ियों में जा छिपे।

उस दिन साँझ होने से पहले ही गाएँ आश्रम में लौट आइऔ। सुंत और उसके साथियों ने आँखों देखी घटना सभी को बताई। सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गए। इससे गायों के दूध में कमी आने के रहस्य का तो पता चल गया, किंतु यह बात किसी की समझ में नहीं आई कि सर्पों को दूध पीने का यह शौक चढ़ा क्यों? गायों को कोई हानि पहुँचाए बिना ये लोभी सर्प दूध पीते रहे। चाहते तो गायों को डस भी सकते थे।

साँझ की हवन-संध्या पूरी हुई। महर्षि कण्व अपने आसन पर बैठे वेद-मंत्रों के तत्त्व की बातें बता रहे थे। कुछ देर बाद रात का अँधियारा घिर आया। महर्षि भी अपनी कुटिया में जाने के लिए उठ खड़े हुए। तभी सुंत ने उठकर उनके चरण स्पर्श किए।

"क्या बात है, सुंत? कुछ कहना चाहते हो?" महर्षि कण्व ने पूछा।

"हाँ, गुरुदेव।" सुंत ने कहा और फिर उसने गायों के दूध में कमी आने और सर्पों द्वारा गायों का दूध पीने की बात विस्तार से महर्षि को बता दी।

सुनकर महर्षि मौन हो गए। फिर बोले, "प्रात:काल मिलना।" इतना कहकर वह अपनी कुटिया में चले गए।

आज आश्रम में अजीब सी हलचल थी। गाएँ चरने के लिए जंगल में नहीं गई थीं। उनके लिए जंगल से चारा काटकर लाया गया था। आश्रम की यज्ञशाला के बाहर एक बड़ी सी यज्ञवेदी बनाई जा रही थी। फूस की ऊँची छत वेदी के चारों ओर बनाई गई थी। कुशा के आसन बिछे थे। शायद किसी विशेष यज्ञ का आयोजन होने वाला था।

तभी सुंत और धौम्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आश्रमवासियों से कहा, "दुष्ट नागों को दंड देने के लिए कल से एक विशेष यज्ञ होनेवाला है।" यह सुनकर जिज्ञासु शिष्य धीरे-धीरे अपनी-अपनी कुटिया में चले गए। धौम्य और सुंत भी यज्ञ-कार्य में व्यस्त हो गए।

अगले दिन सूरज की पहली किरण के साथ ही यज्ञशाला वेद-मंत्रों से गूँज उठी। महर्षि कण्व आचार्य के आसन पर विराजमान हो गए। दूसरे तपस्वी भी वहाँ आ पहुँचे और अपने-अपने स्थान पर आकर बैठ गए। नागों के आचरण से सभी दुखी थे। उन्हें दंड देने के लिए ही यज्ञ का आयोजन किया जा रहा था। अग्निदेव को प्रसन्न करना जरूरी था, ताकि वे प्रसन्न होकर उन नागों को अपनी ज्वाला से भस्म कर सकें।

मंत्रों का उच्चारण शुरू हुआ। एक के बाद एक आहुति प्रज्वलित अग्नि में गिरने लगीं। एक घंटा बीता, फिर दो घंटे। यज्ञ-कर्म में और भी तेजी आ गई। वहाँ उपस्थित जन-समुदाय प्रतीक्षा कर रहा था उस दंड का, जो नागों को मिलने वाला था।

आखिर प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुई। दोपहर का सूरज जैसे ही यज्ञवेदी की छत के ऊपर आया, फुसफुसाहट शुरू हो गई। सभी ने देखा-मणिधारी नागों का एक बहुत बड़ा समूह यज्ञ-वेदी से थोड़ी दूर आकर रुक गया। सभी नाग पंक्तिबद्ध थे। अपने-अपने फन ऊपर उठाकर वे बार-बार यज्ञ-वेदी को नमन कर रहे थे।

महर्षि कण्व ने यह सब देखा, वह ऊँचे स्वर में बोले, "अरे नागो, तुमने अपराध किया है। चोरी से आश्रम की गायों का दूध पिया है। तुम्हें दंड मिलेगा। अग्निदेव तुम्हें दंड देंगे। सिर्फ तुम ही नहीं, बल्कि तुम्हारी पूरी नाग जाति को इस यज्ञ वुंक्तड में भस्म होना पड़ेगा।"

"नहीं-नहीं ऋषिवर।" नाग चिल्लाए, "हमें क्षमा कर दीजिए। हमें इतना कठोर दंड मत दीजिए।"

“दुष्कर्म का दंड अगर न मिले तो दुष्कर्म और भी बढ़ता है।” महर्षि कण्व बोले।

“मगर तपस्वी का धर्म क्षमा है, मुनिवर। हम मान रहे हैं कि यह अपराध हमसे हुआ है, हम अपराधी हैं। अब कृपा करके यह यज्ञ रोक दीजिए। आपकी हर आहुति के साथ हमारे शरीर में जलन पैदा हो रही है। हम भस्म हो जाएँगे देव।” नाग गिड़गिड़ाए।

नागों की विनती सुनकर महर्षि कण्व कुछ देर के लिए सो” में पड़ गए। उन्होंने भय से काँपते हुए नागों की ओर देखा। उनकी वाणी में पश्चात्ताप था। वे अपनी गलती मान गए थे। महर्षि का दयालु हृदय पिघल उठा। यज्ञ की शेष आहुतियाँ रोक दी गइऔ।

यह देखकर सुंत ने कहा, “आचार्यश्री, इन नागों ने अपराध तो किया ही है, अत: इन्हें इसका दंड तो मिलना ही चाहिए।”

“मिलेगा। इन्हें इसका दंड अवश्य मिलेगा, सुंत।” आचार्य बोले, “दंड के बिना इनका प्रायश्चित्त पूरा नहीं होगा।”

महर्षि की बात सुनकर सभी की उत्सुक दृष्टि उनके चेहरे पर जम गई। नाग भी फन फैलाए इस प्रतीक्षा में थे कि देखें आचार्य उनके लिए कौन सा दंड निश्चित करते हैं।

महर्षि ने कहा, “अरे नागो! देवजाति के वंशधर होते हुए भी तुमने चोरी की। आज से तुम देव-जाति से अलग हो जाओगे। तुमने चोरी से आश्रम की गायों का दूध पिया, इसलिए अब से यही दूध तुम्हारी कमजोरी बन जाएगा। जो भी व्यक्ति तुम्हें दूध पिलाएगा, तुम उसी के वश में हो जाओगे। फिर भी लोग तुम्हारी जाति पर विश्वास नहीं करेंगे तथा अविश्वासी मनुष्य तुम्हारा उदाहरण बनेंगे।”

यह सुनकर नागों को बहुत दुख हुआ। मगर जो अपराध उन्होंने किया था, उसका दंड तो उन्हें भोगना ही था। वे सब चुपचाप वापस लौट गए। उसी दिन से साँपों को दूध पिलाया जाने लगा। उसी दिन से अविश्वासी व्यक्ति को ‘आस्तीन का साँप’ कहा जाता है। यह कहावत आज भी प्रसिद्ध है कि अविश्वासी व्यक्ति पर विश्वास करना साँपों को दूध पिलाने के समान है। आज भी नाग उस चोरी का दंड भुगत रहे हैं। कोई भी व्यक्ति उन पर विश्वास नहीं करता। सभी लोग उनसे भयभीत और सतर्क रहते हैं कि कहीं अवसर देखकर हमें डस न लें।

❑

झंडे का रंग

उसने गुरु के आश्रम में रहकर कई वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। जब शिक्षा पूरी हो गई तो वह गुरु-दक्षिणा देने के लिए गुरु के पास गया और बोला, "गुरुवर, आपसे विद्या प्राप्त करके मैंने अपना जीवन सार्थक किया है। आज्ञा कीजिए, मैं आपको क्या अर्पित करूँ?"

गुरुदेव मुसकराते हुए बोले, "वत्स, तुम्हारे अज्ञान का सारा अंधकार मैंने तुमसे पहले ही ले लिया है, अब तुमसे और क्या लूँ? बस तुम सदा ऐसे कार्य करना, जिनसे मानव-जाति की सेवा हो और धरती का अंधकार मिटे।"

यह सुनकर शिष्य नम्रता से बोला, "मैं आपको ऐसा करने का वचन देता हूँ गुरुवर, किंतु गुरु-दक्षिणा में आपको कुछ-न-कुछ तो स्वीकार करना ही होगा।"

शिष्य की हठ को देखते हुए गुरुदेव ने उसे काले रंग का झंडा दिया और कहा, "तुम इस ध्वज को सारे तीर्थ-स्थलों में ले जाना। इसे पवित्र नदियों के जल से धोना। जब इसका रंग सफेद हो जाए तो समझ लेना, मुझे गुरु-दक्षिणा मिल गई।"

शिष्य ने गुरु की आज्ञा मानी और उस काले रंग की पताका को लेकर निकल पड़ा। सबसे पहले वह देश की पवित्र नदियों के किनारे स्थित तीर्थ-स्थानों पर गया। उसने इस नदियों के जल से काली पताका को धोया, किंतु उसका रंग न छूटा। इससे शिष्य को बहुत निराशा हुई। फिर वह अन्य तीर्थ-स्थानों और प्रसिद्ध मंदिरों में गया तथा वहाँ के पावन जल से ध्वज को खूब मल-मलकर धोया, लेकिन उसके रंग में तनिक भी परिवर्तन नहीं आया।

समय बीतता रहा। इस प्रकार पाँच" वर्ष बीत गए। अब वह झंडे का बोझ उठाते-उठाते थक गया था। उसने हजारों मील की पदयात्रा की थी। कभी-कभार वह हताश हो जाता और सोचता, 'क्या मेरे जीवन में यह ध्वज उज्ज्वल हो सकेगा?'

एक दिन की बात है। शाम हो चुकी थी। वह एक तीर्थ-स्थान से लौटकर जंगल के बी" से होकर गुजर रहा था। चलते-चलते अँधेरा घिर आया। जंगली पशुओं से बचने के लिए वह ध्वज सहित एक वृक्ष पर चढ़ गया और वृक्ष की एक मोटी सी शाखा पर बैठ गया। लेकिन उसे नींद नहीं आई। रात के अंतिम पहर में कहीं दूर से उसे घोड़ों के टापों की आवाज सुनाई दी और कुछ देर बाद ही तीन घुड़सवार उसी वृक्ष के नीचे आकर रुक गए। एक घुड़सवार ने एक सुंदर युवती को बलपूर्वक अपने घोड़े पर बैठा रखा था, उस युवती के हाथ-पाँव बँधे हुए थे।

घोड़े से उतरकर उन तीनों ने मिलकर उस नवयुवती को वृक्ष के नीचे लिटा दिया और आपस में बातचीत करने लगे। उनमें से एक ने, जो उनका सरदार लगता था, शेष दो को पानी की खोज में भेजा और स्वयं अपनी थकान मिटाने के लिए जमीन पर लेट गया।

वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ शिष्य सबकुछ देख रहा था। उसे यह समझते देर न लगी कि ये लोग डाकू हैं और इस नवयुवती का अपहरण करके लाए हैं। उसके हृदय में नवयुवती के प्रति दया उपज आई।

थोड़ी देर बाद जब वृक्ष के नीचे लेटा डाकू खर्राटे भरने लगा तो वह धीरे से नीचे उतरा और डाकू को ललकारा।

डाकू हड़बड़ाकर उठा और अपनी तलवार की ओर लपका, किंतु युवा शिष्य पहले से ही उसे उठा चुका था। डाकू के सँभलने और उसके आक्रमण करने से पहले ही उसने तलवार के वार से उसे मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद उसने दो घोड़ों को चाबुक मारकर वहाँ से भगा दिया, ताकि शेष दोनों डाकू वापस आकर उसका पीछा न कर पाएँ।

अब उसने युवती के हाथ-पैर खोले और पूछा कि वह कौन है। युवती ने बताया कि वह जंगल के पार वाले गाँव के साहूकार की बेटी है। उसे ये डाकू विवाह-मंडप से उठा लाए हैं।

"चलो, मैं तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ आऊँ।" कहकर शिष्य ने शीघ्रता से वृक्ष से झंडा उतारा। लड़की को घोड़े पर बिठाया और फिर स्वयं भी उस घोड़े पर बैठकर उसे गाँव की ओर सरपट दौड़ा दिया।

रात बीतने से पहले ही वह लड़की के घर पहुँ" गया। वहाँ विवाह-मंडप उजाड़ पड़ा था और सभी लोग शोक में डूबे हुए थे।

जब युवती ने अपने परिवारवालों को डाकुओं से अपनी मुक्ति की सारी कहानी सुनाई तो उसके पिता ने शिष्य को कृतज्ञतावश गले से लगा लिया और उसका खूब स्वागत-सत्कार किया।

मंडप फिर से सजाया गया और तब लड़की का विवाह विधिवत् संपन्न हुआ। शिष्य फिर से अपनी यात्रा पर निकल पड़ा।

गाँव के बाहर आते-आते भोर का उजाला चारों ओर फैल चुका था। अचानक नजर हवा में फड़फड़ाते झंडे की ओर गई तो आश्चर्य से उसका मुँह खुला-का-खुला रह गया।

उगते सूरज की किरणों में उसके सिर पर काला नहीं, एकदम उज्ज्वल सफेद झंडा फहरा रहा था। यह देखकर शिष्य का हृदय खुशी से गद्‌गद हो उठा। उसने श्रद्धापूर्वक गुरु का स्मरण करते हुए मन-ही-मन कहा, "गुरुदेव, आप धन्य हैं। ज्ञान के साथ निस्स्वार्थ सेवा का पाठ पढ़ाकर आज आपने मेरी शिक्षा पूर्ण कर दी।"

❑

परोपकार का महत्त्व

प्राचीन समय में किसी गाँव में मंगतराम नाम का एक जमींदार रहता था। उसके पास एक घोड़ागाड़ी थी, जिसे प्राय: गाँव के लोग ही अपने कार्यों के लिए इस्तेमाल करते थे। गाँव में कोई अच्छा वैद्य नहीं था, इसलिए जब भी गाँव का कोई आदमी सख्त बीमार पड़ जाता तो वह जमींदार की गाड़ी में बैठकर समीप के नगर में अपना इलाज कराने के लिए जाता था। किसी भी आकस्मिक कार्य के लिए मंगतराम अपनी घोड़ागाड़ी देने के लिए कभी इनकार नहीं करता था।

समय बीतता रहा। फिर एक दिन मंगतराम की मृत्यु हो गई। अंतिम घड़ी में उसने अपने बेटे कृष्णहरि को बुलाकर समझाया था, "बेटा कृष्णहरि, अगर संकट में पड़ा कोई व्यक्ति तुम्हारे पास गाड़ी माँगने आए तो उसे कभी इनकार मत करना। लोगों के दुख-सुख में हमेशा उनकी मदद किया करना।" कृष्णहरि ने अपने पिता को ऐसा करने का वचन दिया।

कृष्णहरि ने अपने पिता को वचन तो दे दिया, किंतु उस वचन पर वह बहुत दिनों तक कायम न रह सका। समय-असमय अगर कोई जरूरतमंद उसकी घोड़ागाड़ी माँगने आ जाता तो कृष्णहरि अपने आराम में खलल पड़ने के कारण उस पर बरस पड़ता था। वह गुस्से में भरकर उसे घर से बाहर निकाल देता था। कृष्णहरि के ऐसे रूखे व्यवहार के कारण शीघ्र ही गाँववाले समझ गए कि उससे गाड़ी माँगने का अर्थ है, अपनी बेइज्जती करवाना। इसलिए उन्होंने बहुत जरूरत पड़ने पर भी कृष्णहरि से कोई मदद माँगना प्राय: बंद ही कर दिया था। वे लोग स्वर्गीय मंगतराम को मन-ही-मन श्रद्धांजलि अर्पित करते और जीवित कृष्णहरि को जी भरकर कोसते रहते।

एक बार आधी रात के समय रंगनाथ की जवान बेटी एकाएक बीमार हो गई। उसे शहर ले जाकर वैद्य को दिखाना बहुत आवश्यक हो गया। रंगनाथ अपनी बेटी को कंधे पर डालकर कृष्णहरि के घर

पहुँचा। उसे नींद से जगाया और उससे उसकी घोड़ागाड़ी देने के लिए प्रार्थना की।

निद्रा भंग होने के कारण कृष्णहरि को बहुत गुस्सा आया। वह

रंगनाथ पर बरस पड़ा-घमैंने कोई खैरातखाना नहीं खोल रखा है कि हर ऐरे-गैरे को मैं अपनी घोड़ागाड़ी देता रहूँ। यह गाड़ी तुम्हारे बाप की बपौती नहीं है।

दोबारा फिर कभी मेरी गाड़ी माँगने के लिए मत आना। चले जाओ यहाँ से चुपचाप।" ऐसा कहकर कृष्णहरि ने फटाक से किवाड़ बंद कर लिया।

उचित इलाज न मिलने के कारण बेचारी लड़की दम तोड़ गई। रंगनाथ बहुत देर तक अपनी बेटी के शव को छाती से लगाए रोता रहा। फिर उसने निश्चय कर लिया कि अपनी जवान बेटी की मौत का बदला वह कृष्णहरि से जरूर लेगा।

अपनी लड़की के शव को वहीं छोड़कर रंगनाथ सीधा नगर के दंडाधिकारी के पास जा पहुँचा। वहाँ उसने कृष्णहरि के खिलाफ अपनी रिपोर्ट दर्ज कराई। उसने दंडाधिकारी को बताया, "हुजूर, इस कृष्णहरि ने मेरी बेटी को काम देने के लिए बुलाया। इसने काम तो करवा लिया, किंतु काम की मजदूरी नहीं दी। मेरी बेटी ने जब इस विषय में इससे कहा तो इसने उसके साथ झगड़ा करना शुरू कर दिया। फिर गुस्से में आकर उसे इतना मारा कि वह दम तोड़ बैठी।"

चूँकि कृष्णहरि किसी की कोई सहायता नहीं करता था, इसलिए दंडाधिकारी भी बहुत दिनों से उससे नाराज था। वह चाहता था कि कब कोई मौका मिले और वह कृष्णहरि को दंड दे। आज उसके हाथ अच्छा मौका लगा तो

उसने कृष्णहरि को सबक सिखाने का निश्चय कर लिया। दंडाधिकारी की पत्नी को जब इस बात का पता चला तो उसने पूछा, “आप निर्दोष कृष्णहरि को दंड क्यों देना चाहते हैं? मुझे तो इस आदमी की यह कहानी सरासर मनगढ़ंत लगती है। भला कृष्णहरि इसकी लड़की की हत्या क्यों करने लगा?”

दंडाधिकारी बोला, “कृष्णहरि एक दुष्ट आदमी है। सारा गाँव उससे नाराज है। वह किसी की सहायता नहीं करता। मैं उसे सजा दूँगा तो सारा गाँव प्रसन्न हो जाएगा।”

“आप भी अजीब आदमी हैं।” दंडाधिकारी की पत्नी बोली, “आपको याद है, जब एक बार हमारे बेटे को सर्प ने काट लिया था और उसके इलाज के लिए शहर ले जाने के लिए कोई वाहन उपलब्ध नहीं था, तब मंगतराम ने ही हमारी मदद की थी और अपनी घोड़ागाड़ी हमारे यहाँ भिजवा दी थी। उस समय यदि मंगतराम हमारी सहायता न करता तो क्या हमारा पुत्र जीवित बचता? ऐसे परोपकारी मंगतराम का पुत्र दुष्ट भले ही हो, कृतज्ञता के साथ उसकी मदद करना हमारा नैतिक कर्तव्य है। आपके मन में यह कैसी कुबुद्धि की बात पैदा हो रही है, जो आप कृष्णहरि को दंड देने पर तुल गए हैं। मुझे तो उसे किसी भी हालत में दंड देना उचित नहीं लगता।”

अपनी पत्नी की बात सुनकर दंडाधिकारी सो” में पड़ गया। उसने गंभीरता से मनन किया तो पत्नी की बात उसे ठीक लगी। तब उसने रंगनाथ को बुलवाया और उससे कहा, “देखो रंगनाथ, कल मुझे एक आवश्यक काम से बाहर जाना है। इसलिए तुम्हारी शिकायत पर मैं तत्काल कोई निर्णय नहीं दे सकता। तुम ऐसा करो, सीधे महाराज के पास जाकर अपनी शिकायत प्रस्तुत करो।”

विवश होकर रंगनाथ राजा के पास पहुँचा और कृष्णहरि के बारे में अपनी शिकायत पेश की। राजा ने कृष्णहरि के गाँव के कुछ लोगों को बुलवाया और उनसे पूछताछ की। उनमें से प्रत्येक ने कृष्णहरि के बारे में बुरा ही कहा। तब राजा ने रंगनाथ के अभियोग पर विश्वास कर कृष्णहरि को फाँसी की सजा सुना दी।

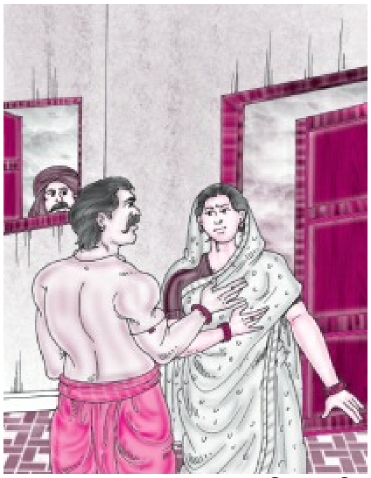

दूसरे दिन कृष्णहरि को फाँसी पर लटकाया जाना था, पर उस दिन वधिक ने अपने अस्वस्थ होने का बहाना बना दिया और वह काम पर नहीं आया। इस प्रकार एक के बाद एक दस दिन व्यतीत हो गए। अब राजा को संदेह होने लगा कि वधिक जान-बूझकर फाँसी के काम में विलंब कर रहा है।

इसलिए वह वास्तविक स्थिति जानने के लिए छद्म वेश धारण कर वधिक के घर पर पहुँचा। वहाँ उसने वधिक की पत्नी को वधिक से यह कहते हुए सुना, “इस प्रकार बीमारी का बहाना बनाकर कितने दिन महाराज को धोखा दे सकोगे? किसी-न-किसी दिन कृष्णहरि को फाँसी पर चढ़ाना ही पड़ेगा न?”

यह सुनकर वधिक बोला, “देखो भागवान, राजा भले ही मुझे फाँसी पर लटका दें, पर मैं किसी भी हालत में कृष्णहरि के गले में फाँसी का फंदा नहीं डालूँगा। हम एक ही गाँव के रहने वाले हैं। बचपन में एक बार जब मैं

बीमारी का शिकार होकर मौत के मुँह में जानेवाला था, तो कृष्णहरि के पिता मंगतराम ने ही अपनी घोड़ागाड़ी भेजकर मुझे शहर में वैद्य के पास इलाज के लिए भेजा था। उन्हीं मंगतराम ने अपने पैसों से मेरा इलाज भी करवाया था। आज अगर मैं जिंदा हूँ तो स्वर्गीय मंगतराम की बदौलत ही हूँ। ऐसे पुण्यात्मा के बेटे को फाँसी पर लटकाकर मैं पाप का भागी नहीं बनना चाहता। तुम्हीं बताओ, एक पुण्यात्मा का पुत्र भला इतना दुष्ट कैसे हो सकता है कि किसी निरीह अबला की जान ही ले ले। मुझे तो लगता है, हमारे महाराज ने निर्णय देने में कुछ गलती जरूर की है।"

उन दोनों की बातें सुनकर राजा भी सो" में पड़ गया। उसे लगा कि रंगनाथ को फिर से बुलाकर संबंधित निर्णय पर पुनर्विचार किया जाए।

दूसरे दिन राजा ने रंगनाथ को अपने दरबार में बुलवाया और गरजकर उससे पूछा, "ईश्वर की शपथ लेकर सच-स" बताओ, रंगनाथ! क्या सचमु" कृष्णहरि ने ही तुम्हारी पुत्री की हत्या की है? मेरे विचार से तो तुम कृष्णहरि पर व्यर्थ ही दोषारोपण कर रहे हो।"

राजा का बदला हुआ लहजा देखकर रंगनाथ भयभीत हो गया और उसने राजा को सच्ची बात बता दी। राजा ने कृष्णहरि को मुक्त कर दिया और उससे कहा, "देखो कृष्णहरि, तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हो जाने पर भी उनके परोपकार के कारण तुम ब" गए। तुम जीवित रहकर भी अपनी दुष्टता के कारण अपने को निर्दोष सिद्ध न कर सके। तुमने हत्या नहीं की, पर इस सच्ची बात के लिए भी किसी ने तुम्हारे पक्ष में कोई गवाही नहीं दी। वह इसलिए कि तुम्हारा स्वभाव दुष्ट प्रवृत्ति का है। तुम ब" गए तो केवल इसलिए कि तुम स्वर्गवासी मंगतराम के पुत्र हो, जोकि बहुत ही दयालु और परोपकारी थे। इस घटना से तुम सबक सीखो और अपने स्वभाव को बदल डालो, अन्यथा आगामी जीवन में तुम्हें बहुत पछताना पड़ सकता है। तुम अपने पिता के समान दयालु और परोपकारी बनो और यथाशक्ति सबकी सहायता करो। इससे तुम्हारा जीवन सुखमय बनेगा।"

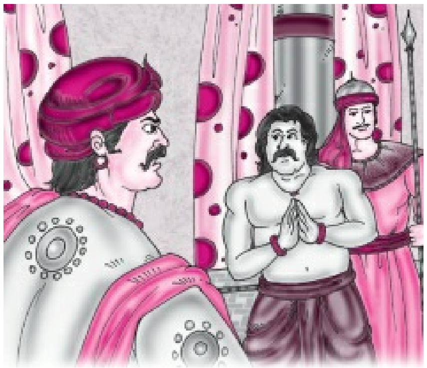

इस घटना से कृष्णहरि को सच एक सबक मिल गया। वह समझ गया कि परोपकार का क्या महत्त्व है। बस उसी दिन से उसने स्वयं को बदल लिया और नेकी के कार्यों में प्रवृत्त हो गया।

❑

वफदारी का बल

पहले समय में वीरभद्र नाम का एक राजा राज किया करता था। वह बहुत शक्तिशाली था। उसकी शक्ति का रहस्य उस किले में था, जो एक बहुत ऊँचे पहाड़ के ऊपर बना हुआ था। किले के मुख्य फाटक के सामने से जो रास्ता घूम-घूमकर नीचे उतरता था, वह भी बहुत चौड़ा था। उसे काट-छाँटकर चढ़ने-उतरने योग्य बनाया गया था, अन्यथा पहाड़ के तीनों ओर बहुत ऊँची खड़ी चढ़ाई थी। उस पर किसी सेना का चढ़कर ऊपर पहुँ" पाना असंभव था। फिर भी वहाँ मजबूत पहरा रखा जाता था। मुख्य फाटक और रास्ते के बी" एक गहरी खाई थी, जिसमें इतना पानी भरा रहता था कि दो हाथी ऊपर-नीचे डूब जाएँ।

राजा के अनेक शत्रु थे। उनमें से कुछ उससे भी अधिक शक्तिशाली सेनाओं के स्वामी थे। उनमें से एक-दो ने राजा के अभेद्य किले पर चढ़ाई करने की कोशिश की भी थी, लेकिन असफल रहे थे।

राजा के अजेय होने का कारण केवल उसका मजबूत किला ही नहीं था, वरन् राजा के तीन मंत्री भी थे और तीनों ही बहुत बुद्धिमान् थे। उनके नाम थे-राजबल, बाहुबल और नीतिबल। ये उनके असली नाम नहीं थे, बल्कि राजा ने ही उनके गुण देखकर ये नाम रखे थे। जीवन और राजकाज में नीतिबल ही सब बलों में प्रमुख होता है, इसलिए राजा ने नीतिबल को अपना प्रधानमंत्री बनाया हुआ था। ये तीनों मंत्री इस प्रकार राज्य का प्रंध चलाते थे, जिससे प्रजाजनों में न कोई भूखा रहता था, न नंगा। सेनाएँ संख्या में कम रखी जाती थीं, लेकिन उनका एक-एक सैनिक चुन-चुनकर रखा जाता था। हर सैनिक को प्रतिदिन कड़ा अभ्यास करना पड़ता था। हर एक को अपनी राज्य-भक्ति पर गर्व था। सैनिक तो सैनिक, साधारण प्रजाजन भी इस ओर से सावधान रहते थे कि राज्य पर कोई आँ" न आने पाए। यही कारण था कि दूसरे राज्यों से अनेक बार जासूसों ने आकर जब राज्य-प्रंध की कमजोरियों की टोह लेनी चाही तो वे मारे गए।

इस रामराज्य की सीमाओं के पार एक विदेशी बादशाह अजलाल की सल्तनत थी। एक बार वह भी अपनी भारी फौज के साथ राजा वीरभद्र के किले पर धावा बोल चुका था। आठ महीने तक बराबर किले का घेरा डाले रखने के बाद भी उसे मुँह की खानी पड़ी थी।

वीरभद्र के राज्य में उसके अधीन अनेक रजवाड़े थे। रजवाड़ों के स्वामियों को 'रावत' कहा जाता था। उनमें एकता थी। जब-जब बादशाह अजलाल ने उनके इलाके हड़पने चाहे, तब-तब वे जंगलों में फैल गए और ऐसा गुरिल्ला-युद्ध छेड़ा कि बरसों न थमा। इन अधीन रावतों में एक बड़े रावत का नाम था-जयसिंह। राजा वीरभद्र उसे मित्रवत् मानते थे। वह भी सदैव राज्य का विश्वासपात्र रहा था। अब उसके दो पुत्र जवान हो चुके थे। दुर्भाग्यवश वे दोनों बुरी लत में पड़ गए थे, जिससे पिता जयसिंह बहुत दुखी थे। दोनों की लत के कारण रजवाड़े का धन भी लुट रहा था। पिछले पाँच" वर्षों में फसलें अच्छी होने पर भी जयसिंह को राजा वीरभद्र से प्रार्थना करके राज्य-कर माफ कराना पड़ा था। यह वृद्ध रावत के लिए डूब मरने जैसी स्थिति थी। उसने अपने दोनों बेटों खजान सिंह और सुल्तान सिंह से साफ कह दिया कि अब वह राजा वीरभद्र की मित्रता का अनुचित लाभ नहीं उठाएगा। दोनों बेटों को अब रजवाड़े से एक निश्चित जेबखर्च मिलेगा, उससे अधिक एक कानी कौड़ी भी नहीं।

बुरी आदतों की कोई सीमा नहीं होती। जेबखर्च भले ही बँध जाए, खर्चे तो नहीं बँध सकते थे। दोस्तों से कुछ दिन उधार माँगकर काम चला, फिर दोस्त भी खिसक लिये। तब एक दोस्त ऐसा निकल आया, जिसके यहाँ उधार की कोई मनाही नहीं थी। उसका नाम था-काले खाँ। काले खाँ सुल्तान अजलाल का जासूस था।

हजारों रुपए उधार देकर एक दिन काले खाँ ने सुझाया, "तुम्हारे जैसे बहादुर और अक्लमंद नौजवान मेरे जैसे

मामूली आदमी से उधार ले-लेकर मौज-मजा करते रहे तो सोचो, ऐसा कब तक चलेगा। अरे! अक्ल से काम लो, तो बादशाह सलामत तुम्हें राजा वीरभद्र की गद्दी सौंप दें।"

"वह कैसे?" दोनों कपूत चौकन्ने हो गए।

"तुम दोनों में से खजान सिंह बड़े हैं। कोई-न-कोई रावत खजान सिंह को अपनी लड़की देने के लिए तैयार हो जाएगा। बस शादी रचाओ। जोरदार धूमधाम हो। राजा वीरभद्र और उसके पूरे खानदान को शादी में आशीर्वाद देने के लिए बुलाओ। उसके मंत्रियों को और उसके सेनापतियों को भी। और हो सके तो सेनाओं को भी। बाकी हम पर छोड़ दो। शादी संपन्न होते-न-होते बादशाह सलामत राजा वीरभद्र के किले पर कब्जा कर लेंगे और राजगद्दी तुम दोनों को सौंप देंगे। इस छोटे से रजवाड़े का 'राज्य-कर' तुम लोग अब भी राजा वीरभद्र को देते हो, तब पूरे राज्य का राज्य-कर देना बादशाह सलामत को और उनकी दोस्ती इनाम में लेना। पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कढ़ाई में।"

दोनों कपूतों ने आपस में विचार-विमर्श किया, फिर बड़े भाई के लिए लड़की ढूँढ़ने का काम छोटे भाई सुल्तान सिंह ने सँभाला। अब तक दोनों कपूत काफी कुख्यात हो चुके थे, फिर भी, एक छोटे रावत के कान में यह बात पूँक्तकी गई कि अगर वह अपनी कन्या का संबंध लेकर रावत जयसिंह के पास जाए, तो शायद वह दहेज वगैरह पर ज्यादा जोर न दें। बड़े घर में कन्या का संबंध हो तो कहना ही क्या? सोचकर कन्या का पिता संबंध लेकर पहुँ" गया। ऊपर से छोटे भाई ने पिता के कान में पूँक्तका, "भाई खजान सिंह कहीं लड़की को देख चुका है। वह कन्या पर मोहित है। बस संबंध हुआ तो बुरी आदतें भी छूट जाएँगी। हाँ, उसकी एक ही इच्छा है कि राजा वीरभद्र मंत्रियों, सेनापतियों व परिजनों सहित आकर वर-वधू को आशीर्वाद दें।"

अंधा क्या चाहे दो आँख। वृद्ध जयसिंह पुत्रों की करतूतों के बारे में नहीं जानते थे। बात जँ" गई। संबंध स्वीकार हो गया। विवाह की तिथि तय हो गई। जयसिंह दीन मित्र के रूप में हाथ जोड़े राजा वीरभद्र के राजदरबार में पहुँचे। राजा वीरभद्र ने उसे भरे दरबार में छाती से लगाकर उसका स्वागत किया।

जब जयसिंह ने अपने आने का कारण बताया, तो राजा वीरभद्र ने उसे बहुत-बहुत बधाइयाँ दीं और दल-बल सहित वर-वधू को आशीर्वाद देने आने का वचन दिया। फिर राजा के आग्रह पर जयसिंह प्रसन्न भाव से राजकीय अतिथि बनकर तीन दिनों के लिए वहीं ठहर गए।

तीनों बुद्धिमान मंत्रियों को दूर से ही विपत्ति की गंध आ जाती थी। उनके माथे पर बल पड़ गए। रात के समय तीनों में मंत्रणा हुई। अगले दिन सुबह-सुबह राजबल और बाहुबल की उपस्थिति में नीतिबल ने अकेले में राजा वीरभद्र से प्रार्थना की, "महाराज, आपने दल-बल सहित रावत जयसिंह के पुत्र के विवाह में आशीर्वाद देने का

वचन देकर अच्छा नहीं किया।"

"क्यों?" राजा ने आश्चर्य से पूछा।

"महाराज," नीतिबल ने कहा, "रावत जयसिंहजी इस राज्य के लिए सूर्य के समान हैं, किंतु आप अपने सुदृढ़ किले में इस प्रकार रहते हैं, जैसे जल में कमल रहता है। जब तक कमल अपने जलाशय में है, तब तक सूर्य का प्रकाश उसे कांति और तेज प्रदान करता है। कमल के चौड़े पत्ते हरे-भरे रहते हैं, जलाशय में फैलते चले जाते हैं, लेकिन एक बार कमल जल से बाहर निकला कि सूर्य का वही तेज उसे सुखा डालता है। इसमें सूर्य का भी दोष नहीं, क्योंकि वह स्वयं अपनी किरणों पर अंकुश नहीं लगा पाता।"

महाराज वीरभद्र की आँखें खुल गइऔ। वह चिंतित स्वर में बोले, "किंतु मैं तो रावतजी को वचन दे चुका हूँ।"

नीतिबल ने राजबल और बाहुबल का संकेत पाकर कहा, "महाराज, वचन की रक्षा करना हर राजपूत का धर्म है। रावत जयसिंहजी आजकल धन के अभाव से ग्रस्त हैं। आप दो बार उनका राज्य-कर माफ कर चुके हैं। आपका धर्म है कि इस अचानक आ पड़े पारिवारिक काम में उनकी सहायता करें। कम-से-कम उनके बड़े पुत्र का विवाह राजधानी में राज-व्यय से होना ही चाहिए। राज्य के भंडारों में उन्हें एवं उनके अतिथियों को सप्ताह भर तक खिलाने योग्य सामग्री भरी पड़ी है।"

यह बात न केवल राजा वीरभद्र को ही जँ" गई, बल्कि जब उन्होंने अपने मित्र जयसिंह के सामने अपनी इच्छा जताई, तो उनकी आँखें में हर्ष के आँसू उमड़ आए। प्रस्ताव स्वीकार कर वह खुशी-खुशी अपने रजवाड़े के लिए लौटे। किंतु तब उन्होंने यह बात अपने पुत्रों को बताई, पुत्रों ने काले खाँ को और काले खाँ ने बादशाह अजलाल को बताई, तो बादशाह ने अपना सिर पीट लिया।

राजा वीरभद्र के सुदृढ़ किले में जयसिंह के बड़े बेटे खजान सिंह का विवाह जिस धूमधाम से हुआ, और राजा के साथ-साथ किले की प्रजा तक ने वर-वधू को आशीर्वाद देते समय जिस प्रकार धन-धान्य से उसके भंडार भर दिए, उसके कारण जयसिंह के परिवार की दरिद्रता ही दूर हो गई। यही नहीं, उनके कपूतों ने भी पहली बार यह समझा कि महाराज वीरभद्र का वफादार बने रहने में ही उनकी भलाई और भावी उन्नति छिपी हुई है।

❑

बरगद की गवाही

किसी गाँव में शिवनारायण नाम का एक आदमी रहता था। वह एक धनी व्यक्ति था। समय-समय पर वह दूसरे लोगों को धन देकर उनकी सहायता कर दिया करता था। जब लोगों की फसल कटकर घर आ जाती तो लोग अनाज बेचकर उसका कर्ज उतार देते थे। शिवनारायण परोपकारी भी था, इसलिए वह सिर्फ उतना ही पैसा उनसे लेता था, जितना उसने उन्हें दिया था। वह उन लोगों से कोई ब्याज वसूल नहीं करता था।

एक दिन शिवनारायण किसी दूसरे गाँव को जाने के लिए घर से निकला। गाँव से बाहर उसे देवदत्त नाम का उसी गाँव का एक व्यक्ति मिला। देवदत्त ने उसे प्रणाम किया, फिर नम्रतापूर्वक उससे बोला, "सेठजी, मेरी झोंपड़ी बहुत जीर्ण हो गई है। बरसात का मौसम शुरू होने से पहले ही मैं उस पर नया छप्पर डलवाना चाहता हूँ, अगर मैंने ऐसा न किया तो पुराना छप्पर इस बार की बरसात को झेल नहीं पाएगा। आप मुझे दो सौ रुपए उधार दे दें तो मैं उस पर नया छप्पर डलवा लूँ। मैं अनाज बेचकर आपका पैसा सूद समेत चुका दूँगा।"

शिवनारायण को उस पर दया आ गई। उसने अपनी थैली से दो सौ रुपए निकाले और देवदत्त को थमा दिए।

पर देवदत्त ने अपने वचन का पालन नहीं किया। हालाँकि उसकी एक फसल पककर कट चुकी थी और दूसरी "र में आने वाली थी। फिर भी उसने शिवनारायण का कर्ज चुकाने का नाम न लिया।

इस पर एक दिन शिवनारायण ने उसे अपने पास बुलाया और प्रेमपूर्वक पूछा, "देवदत्त, तुमने अब तक मेरा कर्ज नहीं लौटाया है। एक साल तो कभी का पूरा हो चुका, दूसरा भी पूरा होने को है।"

"आप यह क्या कह रहे हैं। मैंने आपसे कर्ज लिया था? मैंने तो कभी भी आपसे कर्ज नहीं लिया। जरा स्पष्ट रूप से समझाइए।" देवदत्त ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा।

शिवनारायण ने कहा, "जरा याद करो मित्र, तुम्हें अपनी झोंपड़ी पर नया छप्पर डलवाना था। हम रास्ते में मिले थे और मैंने तुम्हें दो सौ रुपए कर्ज में दिए थे। अब तुम ऐसी बात कर रहे हो, जैसे तुम्हें कुछ भी याद नहीं।"

"मैं भले ही भूल जाऊँ, पर आपके पास लिखा-पढ़ी का कागज तो होगा ही। उसे मेरे पास भिजवा दीजिए। मैं उसके अनुसार आपका कर्ज चुका दूँगा।" देवदत्त ने कहा। वह भली-भाँति जानता था कि उसने पैसे लेते वक्त शिवनारायण को कोई कागज लिखकर नहीं दिया था।

शिवनारायण ने कहा, "तुमने कोई कागज लिखकर तो मुझे दिया नहीं था। मैंने भी यह सोचकर तुमसे कागज नहीं लिखवाया कि कुछ दिनों में कर्ज चुकाने वाले से कागज-पत्र क्या लिखवाऊँ?"

"शिवनारायणजी, माना कि आप धनी आदमी हैं, संपन्न परिवार से हैं। किंतु मुझको भोला और गँवार समझकर आप अपना कर्ज मुझ पर क्यों लाद रहे हैं?" देवदत्त ने कुछ क्रोधित होकर कहा।

उन दोनों का यह वाद-विवाद सुनकर गाँव के कई लोग वहाँ जमा हो गए। सबने दोनों से पूछा, "आखिर माजरा क्या है? आप दोनों किसलिए झगड़ रहे हैं?"

शिवनारायण ने सारी हकीकत उन्हें बता दी। पर देवदत्त ने शिवनारायण की बताई हुई सारी बातों को झूठा बताया। वह बार-बार यही रट लगाता रहा कि मैंने शिवनारायण से कभी कोई पैसा उधार लिया ही नहीं। शिवनारायण धनी होने का रोब दिखाकर मुझसे जबरन पैसे ऐंठना चाहता है।

आखिर गाँववालों ने उन दोनों को सलाह दी, "यह मामला मुखिया ही निपटाएँगे, इसलिए क्यों न उनके पास चलें?"

देवदत्त ने कहा, "मुझे किस बात का डर है। चलिए, मैं चलता हूँ, मुखियाजी के पास। मैं उन्हें सारी बातें बता

दूँगा।" इस प्रकार सारे लोग गाँव के मुखिया के पास जा पहुँचे।

गाँव का मुखिया बहुत ही अक्लमंद और चतुर व्यक्ति था। वह दूध का दूध और पानी का पानी करने में कुशल था। उसने शिवनारायण और देवदत्त, दोनों के तर्क बड़ी शांति के साथ सुने।

देवदत्त से कैफियत माँगने पर उसने गुस्से में भरकर कहा, "मैं भिखारी थोड़े ही हूँ। मुझे दो सौ रुपए कर्ज लेने की क्या गरज थी? मैंने अपने खेत का धान बेचकर अपनी झोंपड़ी की मरम्मत करवाई थी। अगर शिवनारायण ने मुझे दो सौ रुपए का कर्ज दिया था तो इतने दिन तक वह चुप क्यों रहे? क्यों उन्होंने दो साल तक कोई लिखा-पढ़ी नहीं करवाई?"

"भाईसाहब, उस समय वहाँ कोई था ही नहीं। मैंने एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर तुम्हें रुपए दिए थे।" शिवनारायण ने कहा।

गाँव के मुखिया ने कहा, "ठीक है। हम उस बरगद को ही अपना गवाह बना लेते हैं। अभी जाकर उस बरगद के वृक्ष से यह कह दो कि मैंने उसको यहाँ पर बुलाया है।"

"यह आप क्या कह रहे हैं, मुखियाजी। बरगद का पेड़ भी कहीं गवाही देने के लिए यहाँ आ सकता है?" शिवनारायण ने शंकालु स्वर में पूछा।

मुखिया ने कहा, "मैं आदेश दूँगा तो उसे आना ही पड़ेगा। आप बस जाकर उसे मेरा संदेश दे आइए। हम सब तब तक आपकी प्रतीक्षा करते रहेंगे।" मुखिया का आदेश था, इसलिए शिवनारायण उस बरगद के वृक्ष से यह बात कहने के लिए चला गया।

मुखिया की बात सुनकर सब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। देवदत्त तो बहुत ही खुश हुआ। वह मन-ही-मन सोचने लगा, इस बूढ़े मुखिया का दिमाग अवश्य ही खराब हो गया है। इसलिए मेरे द्वारा कर्ज लेने की बात साबित ही कैसे हो सकती है?

थोड़ी देर मौन रहकर अब मुखिया ने देवदत्त से प्रश्न किया, "देवदत्त, क्या शिवनारायण अब तक बरगद के उस वृक्ष के पास पहुँ" गया होगा?"

देवदत्त बोला, "इतनी जल्दी वह वहाँ कैसे पहुँ" सकता है? वह बरगद का वृक्ष तो यहाँ से दो कोस की दूरी पर है। इसके अलावा बारिश भी तो हो गई है न। वह तालाब वाला रास्ता कीचड़ से भरा होगा। फिर वहाँ इतने बरगद के वृक्ष हैं कि उनमें से उस बरगद को पहचानना आसान थोड़े ही है।"

यह सुनते ही बूढ़े मुखिया ने देवदत्त की पीठ पर एक मोटी छड़ी उठाकर दे मारी और गरजकर कहा, "अरे कमबख्त चोर! तो तुम यह भी जानते हो कि शिवनारायण ने तुमको किस बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर रुपए दिए

थे।"

मुखिया की चतुराई पर सभी ग्रामवासी मुग्ध हो गए। कुछ और दबाव पड़ा तो देवदत्त ने स्वीकार कर लिया कि उसने अब से दो वर्ष पूर्व शिवनारायण से दो सौ रुपए बतौर कर्ज लिये थे। उसने वह रुपया सूद सहित शिवनारायण को लौटा दिया। शिवनारायण यद्यपि किसी से कर्ज के बदले में सूद नहीं लिया करता था, किंतु उस दिन उसने अपने दिए हुए धन का ब्याज लेने से इनकार नहीं किया। उस दिन से देवदत्त भी बहुत लज्जा महसूस करने लगा। गाँववालों के बी" सिर उठाकर चलने में उसे बहुत लज्जा महसूस होने लगी थी।

❑

मेहनतकी कमाई

एक समय की बात है, किसी गाँव में एक दरजी रहता था। वह बहुत गरीब था। वह मन-ही-मन सोचता रहता था, 'मैं इतनी मेहनत करता हूँ, फिर भी पैसे क्यों नहीं जोड़ पाता हूँ।'

एक दिन उसने अपने मन में विचार किया, 'इस गाँव में मेरा कोई भविष्य नहीं। मुझे शहर चलकर अपना भाग्य आजमाना चाहिए। शायद वहाँ पर देवी लक्ष्मी मुझ पर मेहरबान हो जाएँ और मेरी हालत सुधर जाए।' यह सोचकर वह शहर की ओर चल पड़ा।

दरजी अभी थोड़ी दूर ही पहुँचा था कि उसे रास्ते में एक लकड़हारा दिखाई दिया, जो एक वृक्ष से लकड़ियाँ काट रहा था। दरजी ने उससे पूछा, "भैया लकड़हारे, तुम लकड़ियाँ काटकर कितने पैसे कमा लेते हो?"

"कुछ न पूछो, दोस्त!" लकड़हारा लकड़ियाँ काटना छोड़कर उसकी ओर मुँह करके उदास स्वर में बोला, "सारे दिन मेहनत करता हूँ, फिर भी दो जून की रोटी का जुगाड़ बड़ी मुश्किल से होता है। और कोई काम मैं जानता नहीं, इसलिए पेट भरने के लिए लकड़ियाँ काटता हूँ और उन्हें बे" देता हूँ। बस इसी तरह से जिंदगी कट रही है।"

यह सुनकर दरजी ने कहा, "मैं भी तुम्हारी तरह बहुत मेहनत करता था किंतु उससे मुझे कोई फायदा नहीं हुआ। इसलिए अब मैं गाँव छोड़कर शहर जा रहा हूँ, इस उम्मीद के साथ कि हो सकता है, वहाँ कोई चमत्कार हो जाए और मेरी दरिद्रता दूर हो जाए।"

दरजी की बात सुनकर लकड़हारे ने अपनी कुल्हाड़ी फेंक दी। बोला, "चलो, मैं भी तुम्हारे साथ शहर चलता हूँ।"

दोनों एक साथ शहर की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें लकड़ी का एक कारखाना दिखाई दिया। वहाँ एक बढ़ई लकड़ी के कुछ टुकड़े लेकर उनको जोड़ने की कोशिश कर रहा था, जिससे कि वह एक सुंदर सी मेज बना सके। जब दरजी और लकड़हारा उसके समीप पहुँचे तो वह अपनी दुखती कमर को सहलाते हुए सीधा खड़ा हो गया।

लकड़हारे ने उस बढ़ई से कहा, "भैया बढ़ई, हम दोनों भी तुम्हारी तरह कड़ी मेहनत करते थे, पर उस मेहनत का हमें कभी लाभ नहीं मिला। इसलिए अब हम शहर जा रहे हैं। शायद वहाँ धनी बनने की हमें कोई राह मिल जाए।"

उनकी बात सुनकर बढ़ई ने भी अपने औजार एक तरफ रख दिए और कहने लगा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

तीनों शहर की ओर चल पड़े। जब उन्हें भूख लगी तो उन्होंने आग जलाई और भोजन तैयार किया। उसी समय एक बूढ़ी औरत भी वहाँ आ पहुँची। वे सब आपस में बातें करने लगे। जब उस बूढ़ी औरत को यह पता चला कि उन तीनों ने ज्यादा धन कमाने के लाल" में अपना-अपना घर छोड़ा है, और वह भी किसी दैवी चमत्कार की आशा करके, तो वह उनसे बोली, "तुम लोगों ने अपना घर छोड़कर मूर्खतापूर्ण काम किया है।"

"क्यों? अगर कोई परी हमें मिल जाए और उसके वरदान से हम रातोरात धनी बन जाएँ तो?" दरजी ने पूछा।

"तब तुम यह समझ लो कि बुढ़िया के वेश में मैं भी एक परी हूँ। बोलो, तुम्हें क्या वरदान चाहिए? मैं तुम तीनों को एक-एक वरदान दूँगी और देखूँगी कि तुम लोग उसका क्या लाभ उठाते हो?" इतना कहकर बुढ़िया दरजी की तरफ देखने लगी।

दरजी ने अपने धंधे को ध्यान में रखते हुए कहा, "तब तुम मुझे ऐसा वरदान दो कि मैं जिस भी चीज को खींचूँ,

वह लंबी होती चली जाए।"

"ठीक है, ऐसा ही होगा?" परी ने कहा।

अब उसने लकड़हारे की तरफ देखा। लकड़हारे ने अपने लकड़ी काटने के काम को ध्यान में रखते हुए कहा, "मैं चाहता हूँ कि मैं जिस चीज को हाथ से मारूँ वह टूट जाए।"

"ऐसा ही होगा।" परी ने कहा।

तब उसने बढ़ई की तरफ देखा। बढ़ई ने अपने काम को ध्यान में रखते हुए कहा, "मेरी इच्छा है कि मैं जिस वस्तु को एक साथ रखूँ, वह मजबूती के साथ जुड़ जाए।"

"ऐसा ही होगा।" परी ने कहा, फिर वह उठ खड़ी हुई और वहाँ से चली गई।

परी के जाने के बाद दरजी बोला, "अब हमें यह देखना चाहिए कि जो वरदान परी ने दिया है, वह पूरा होता भी है या नहीं।" यह कहकर उसने अपने झोले में से कपड़े का एक टुकड़ा निकाला और उसे खींचा। यह देखकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा कि कपड़े का वह टुकड़ा लंबाई में बढ़ता ही चला गया।

उसके बाद लकड़हारा उठ खड़ा हुआ। उसने अपना हाथ एक पेड़ के तने पर दे मारा। पेड़ के दो टुकड़े हो गए। तब बढ़ई ने उस टूटे हुए पेड़ के एक भाग को उठाया और उसे पेड़ के तने के साथ लगाया। बढ़ई के ऐसा करते ही पेड़ के दोनों भाग मजबूती से आपस में जुड़ गए।

यह देखकर तीनों खुशी से झूम उठे और आग के चारों ओर नाचने लगे। दरजी ने बातों ही बातों में अपनी नाक को पकड़कर खींचा। यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसकी नाक खिंचकर लंबी हो गई। उसने अपने मन में सोचा, 'हाय, अब मेरा क्या होगा? मैंने तो अपने मन में कपड़े को ध्यान में रखकर ही यह वरदान माँगा था।'

जब लकड़हारे ने दरजी की लंबी नाक देखी तो वह अपनी हँसी न रोक सका। हँसते-हँसते उसने अपना हाथ जोर से अपने पैर पर दे मारा। चटाख की आवाज हुई और उसके पैर की हड्डी टूट गई। उसने परी से वरदान जो माँगा था कि वह अपना हाथ से जिस चीज पर मारे, वह टूट जाए। उसने अपने मन में सोचा, 'हाय! अब क्या होगा? मैंने तो पेड़ काटने की बात ध्यान में रखते हुए ही उस परी से यह वरदान माँगा था। यहाँ तो मेरी टाँग ही टूट गई।'

उन दोनों की ऐसी दुर्गति देखकर बढ़ई आपा खो बैठा। वह जल्दी-जल्दी अपना जूता पहनने लगा, जो उसने उतारकर पास ही रख दिया था। वह गुस्से में भरकर बोला, "मैं अभी उस बुढ़िया को बुलाकर लाता हूँ।"

पर यह क्या? बढ़ई का हाथ अपने जूते से चिपक गया और वह एक कदम भी आगे न चल सका।

भाग्यवश उसी समय वही परी, जिसने बुढ़िया का वेश बनाया हुआ था, झाड़ी के पीछे से प्रकट हो गई और

उनसे बोली, "तुम लोगों को वरदान माँगने से पहले खूब अच्छी तरह से सोचकर ही वरदान माँगना चाहिए था। अब बोलो, क्या मैं अपने वरदान वापस ले लूँ, जिससे कि तुम अपनी पहली जैसी हालत में लौट सको।"

"जरूर-जरूर।" वे तीनों परी के सामने गिड़गिड़ाने लगे।

परी ने अपने वरदान वापस ले लिये। तब उन तीनों ने कसम खाई कि वे अब कभी भी धन के लाल" में इधर-उधर नहीं भटकेंगे, मेहनत से मुँह नहीं मोड़ेंगे, और जो कुछ मेहनत से कमाई होगी, उसी से अपनी गुजर-बसर करेंगे। उन तीनों के साथ तो वही कहावत चरितार्थ हो गई-घलौट के बुद्धू घर को आए।"

❑

घमंड का फल

बहुत दिनों पुरानी बात है, एक मोची अपने गाँव से दूर एक छोटी सी झोंपड़ी में रहा करता था। रोज सुबह वह गाँव जाता और किसी सड़क के किनारे बैठकर लोगों के जूते गाँठा करता। वह अपने काम के बहुत कम पैसे लेता था, इसलिए उसकी दिन भर की कमाई एक-दो रुपए से अधिक न होती थी। बहरहाल, वह जो कुछ भी कमाता, उसे सँभालकर एक डिब्बे में रख लेता था। शाम के वक्त वह अपने औजार समेटता और घर की ओर रवाना हो जाता।

घर पहुँचकर वह अपने औजार सँभालकर रखता और पास ही बहती नदी में नहाने के लिए चला जाता। नहाने के बाद वह अपने लिए सादा सा खाना तैयार करता। उस खाने में से आधा तो वह स्वयं के लिए रख लेता और आधा खाना अपने पड़ोस में रहने वाले अंधे बूढ़े भिखारी को दे आता। फिर वह झोंपड़ी के दरवाजे पर बैठकर अपनी दिन भर की कमाई गिनता और उन चीजों के बारे में सोचता, जिनकी उसे आवश्यकता होती थी। उसकी कमाई क्योंकि ज्यादा नहीं थी, इसलिए वह जरूरत की सभी चीजें तो नहीं खरीद सकता था, केवल उन चीजों को खरीदने की सोचता, जिनकी उसे सबसे ज्यादा जरूरत होती थी।

यह मोची का नित्य का कार्यक्रम था। वह उस अंधे और बूढ़े भिखारी को खाना खिलाए बिना स्वयं कभी नहीं खाता था। अंधा भिखारी उसे बहुत सी आशीषें देता और उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करता।

कई वर्ष तक मोची का यही नित्य-कर्म चलता रहा। एक रात उसने सपना देखा कि एक देवदूत उसके पास आया और उससे कहा कि तुम एक लाचार और दृष्टिहीन व्यक्ति की सहायता कर रहे हो। इसके बदले में ईश्वर ने तुम्हें एक वरदान देने का निर्णय किया है। यह कहकर उसने मोची को एक पौधा दिया और कहा, "तुम इसे अपने घर के सहन में लगा दो। इससे तुम्हें हर रोज सोने की एक मोहर मिल जाया करेगी।" फिर वह देवदूत उसकी दृष्टि से ओझल हो गया।

देवदूत के ओझल होते ही मोची की नींद टूट गई। वह अचकचाकर उठ बैठा। पहले तो उसने यही समझा कि यह एक सपना मात्र है, किंतु जब उसने अपने सामने सचमु" ही एक पौधा रखा देखा तो वह चकित रह गया। उसने खुश होकर वह पौधा उठाया और अपनी झोंपड़ी के पिछवाड़े जमीन में लगा दिया।

दिन बीतते रहे। मोची ने बड़ी मेहनत से पौधे की देखभाल की। वह उसमें रोज पानी देता और उसे चिड़ियों एवं दूसरे जानवरों से बचाता। उसने कमजोर पौधे को सहारा देने के लिए पेड़ की एक टहनी भी जमीन में गाड़ दी। मेहनत कभी भी अकारथ नहीं जाती। मोची की मेहनत भी रंग लाई और वह नन्हा सा पौधा जल्दी ही बड़ा और मजबूत हो गया।

एक दिन सुबह के समय मोची पौधे में पानी देने के लिए गया तो उसने देखा कि पौधे की टहनी पर सोने की एक मोहर चमक रही है। मोची भागा-भागा गया और एक बड़ा मजबूत डिब्बा खरीद लाया; फिर वह सोने की मोहर पौधे से तोड़कर उसने डिब्बे में सँभालकर रख दी। कुछ ही महीनों में वह डिब्बा सोने की मोहरों से भर गया।

मोची अब एक अमीर आदमी बन गया था। उसने जूतों की मरम्मत करने का काम छोड़ दिया और गाँव के बाजार में अपनी स्वयं की जूतों की दुकान खोल ली। कुछ ही दिनों में उसकी दुकान खूब चल निकली। तब उसने अपने रहने के लिए एक खूबसूरत और आरामदायक मकान बनवाया, जिसके चारों ओर एक रमणीक बगीचा था। उसी बगीचे में दूसरे सुंदर-सुंदर पौधों और फूलों के बी" वह पौधा भी था, जिस पर हर रोज एक सोने की मोहर लगती थी। मोची अब गाँव का सम्मानित व्यक्ति समझा जाने लगा। शीघ्र ही उसने एक धनवान व्यापारी की बेटी से शादी कर ली। अब वह अंधा भिखारी उसे याद नहीं रहा था, जिसको वह नित्य खाना खिलाया करता था, और

जिसकी आशीष एवं दुआओं से ही उसे ईश्वर ने धनवान बनाया था।

वह अपनी खुशियों और आनंद से भरपूर जीवन में मगन था। एक दिन मोची की पत्नी ने अपने बगीचे में लगा हुआ वह बेढंगा पौधा उखड़वाकर फिंकवा दिया। मोची ने भी अब उस पौधे के उखड़ने की कोई परवाह नहीं की, क्योंकि अब उसके पास ढेरों मोहरें मौजूद थीं।

ईश्वर को मोची का यह कार्य पसंद नहीं आया। धनवान होने के बाद उसने ईश्वर के वरदान को भुला दिया था। वह अपनी दौलत गरीब और जरूरतमंद लोगों पर खर्च न करके स्वयं के आनंद के लिए खर्च करता था। यदि कोई गरीब उसके सामने हाथ फैलाता तो वह उसे दुत्कार देता। वह पौधा भी उसकी पत्नी ने उखड़वा दिया था। यद्यपि उखाड़े जाने पर भी वह पौधा बहुत दिनों तक सूखा नहीं था। मोची यदि चाहता तो उसे अच्छे ढंग से रोपकर उसकी देखभाल करता तो वह पौधा फिर से लहलहा उठता। किंतु मोची तो धन के नशे में चूर हो रहा था, उसने उसे फिर से रोपने की कोई जरूरत नहीं समझी। उसकी इन सब हरकतों को देखकर ईश्वर उससे नाराज हो गया और उसने उसे दंड देने का निर्णय कर लिया।

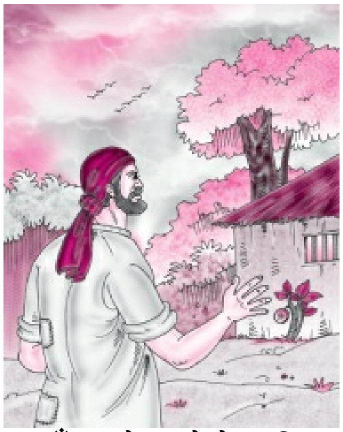

अगली सुबह जब मोची अपनी दुकान पर पहुँचा, तो उसने देखा कि उसकी दुकान आग की लपटों में घिरी हुई है और उसके नौकर तथा साथी दुकानदार आग बुझाने की कोशिश कर रहे हैं। मगर आग इतनी तेज थी कि कुछ ही मिनटों में उसने सारी दुकान को जलाकर खाक कर दिया। अपनी दुकान का यह हाल देखकर मोची को बहुत दुख हुआ। वह उदास मन से अपने घर की ओर चल दिया। घर पहुँचकर उसने अपनी पत्नी को सारा हाल सुनाया। उसकी पत्नी के दिल को भी भारी सदमा पहुँचा, किंतु फिर उसने उसे भाग्य में लिखा हुआ समझकर अपने पति को तसल्ली दी कि हमारे पास बहुत से साधन हैं। हम नई दुकान बना लेंगे।

दूसरे दिन गाँव में बहुत भारी तूफान आया। तेज हवा और मूसलधार बारिश ने गाँववालों को बहुत भयभीत कर दिया। मोची का घर गाँव के कुछ परे हटकर था, इसलिए वही सबसे अधिक तूफान से प्रभावित हुआ। मोची और उसकी पत्नी बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचाने में सफल हुए। मगर अगले ही दिन उसके घर में भयंकर आग लग गई और दुकान की तरह उसका घर भी जलकर राख हो गया।

मोची की पत्नी इन दुर्घटनाओं से घबराकर अपने धनवान पिता के पास चली गई। मोची अकेला रह गया। अब मोची को वह पौधा याद आया, जिसे उसकी पत्नी ने फिंकवा फेंक दिया था और जिसकी मोची ने भी कोई परवाह नहीं की थी। सहानुभूति प्रकट करने के लिए आने वालों से मोची ने कहा, "घबराओ नहीं। मैं फिर से अमीर बन जाऊँगा।"

लोगों ने पूछा कि वह कैसे? तो मोची ने उन्हें अपनी सारी कहानी सुनाई और कहा, "मैं अभी जाकर उस शुभ पौधे को ले आता हूँ। फिर तुम लोग देखना, मैं जल्दी ही फिर से अमीर बन जाऊँगा।"

मोची की कहानी सुनकर लोग हैरान रह गए, और वे भी उसके साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मोची की पत्नी ने वह भाग्यशाली पौधा फेंका था। वहाँ उन्हें उस पौधे के बचे-खुचे कुछ टुकड़े नजर आ गए। तब हर व्यक्ति ने उस पौधे की एक-एक टहनी उठा ली और खुशी-खुशी अपने-अपने घरों को चले गए। मोची भी एक पुरानी टहनी लेकर अपने खँडहर बने मकान में आ गया। उसने पौधे की टहनी फिर से जमीन में रोप दी और नित्य-प्रति उसमें पानी देने लगा। बहुत दिन बीत गए किंतु न तो पौधा ही हरा हुआ और न उसकी टहनी पर कोई मोहर उगी। उस दुर्भाग्यशाली मोची के पास अब इसके सिवा कोई उपाय शेष न बचा कि वह फिर से लोगों के जूते गाँठना शुरू कर दे, अपनी उस पुरानी झोंपड़ी में फिर से रहने लगा, क्योंकि ईश्वरीय प्रकोप से उसका शानदार मकान तो खँडहर में तब्दील हो चुका था। मोची को अब वह अंधा भिखारी याद आया, जिसकी आशीष और दुआओं से ईश्वर ने उसे धनवान बना दिया था। वह उसके पास पहुँचा और अपनी लापरवाही के लिए क्षमा माँगी। वह भिखारी को फिर से भोजन खिलाने लगा।

एक दिन उसने देखा कि वह पौधा फिर से हरा होने लगा है। कुछ दिन बाद उसके पौधे पर फिर से नई कोंपलें उग आइऔ और वह पौधा फिर से लहलहाने लगा। लेकिन पहले के पौधे और अब के पौधे में एक भारी परिवर्तन हो चुका था। इस बार के नए उगे पौधे पर सोने की मोहर तो क्या, पीतल का भी कोई सिक्का नहीं उगा था। मोची जब तक गरीब था और ईमानदारी से काम करता हुआ अंधे फकीर की मदद करता रहा था, ईश्वर ने भी उसकी मदद की, किंतु जैसे ही धन पाकर उसके मन में घमंड पैदा हुआ, ईश्वर ने अपनी सारी मेहरबानियाँ उससे छीन लीं। किसी ने स" ही कहा है, "घमंडी व्यक्ति का घमंड एक दिन जरूर टूटता है।"

❑

सहयोग का फल

बात बहुत पुराने समय की है, किसी गाँव में एक गड़रिया रहता था। उसके परिवार में पत्नी के अतिरिक्त एक लड़की और एक लड़का था।

जब भी गड़रिया और उसकी पत्नी मवेशी चराने के लिए चरागाह में जाते तो अपनी लड़की को अपने भाई का ध्यान रखने के लिए बोल जाते थे। रोज की तरह उस दिन भी माँ ने कहा, "बेटी, हम लोग काम पर जा रहे हैं। तू अपने भाई की देखभाल करना। तू ठीक से देखभाल करेगी तो हम तेरे लिए बगीचे से खूब सारे फल तोड़कर ले आएँगे।" ऐसा कहकर माँ-बाप काम पर चले गए।

लड़की ने अपने भाई को घर के बाहर घास पर लिटा दिया और उसके पास बैठ गई। कुछ देर बाद उसकी सहेलियाँ खेलने के लिए वहाँ आ गइऔ। लड़की खेलने में मगन हो गई और यह भूल गई कि उसकी माँ ने उससे क्या कहा था? वह अपने छोटे भाई को वहीं छोड़कर सहेलियों के साथ कुछ दूर बाहर खेलने चली गई।

अचानक गिद्धों का एक झुंड उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उनमें से एक शक्तिशाली गिद्ध ने अपनी चों" में भर लिया और दूसरे गिद्धों के साथ आसमान में उड़ गया।

जब लड़की खेलकर वापस लौटी तो वह हक्की-बक्की रह गई। उसका छोटा भाई गायब हो चुका था। लड़की ने उसे इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा, किंतु जब वह नहीं मिला तो वह रोने लगी।

तभी उसे याद आया कि कुछ देर पहले उसने गिद्धों के झुंड को इधर ही उड़कर आते देखा था। तब वह लड़की मैदान की तरफ दौड़ पड़ी। दूर आसमान में उसे उड़ते हुए गिद्ध नजर आ गए। लड़की को समझते देर न लगी कि यह काम गिद्धों का ही है। उसने आव देखा न ताव, और दौड़ पड़ी उन गिद्धों के पीछे।

रास्ते में उसे एक बड़ा सा तंदूर दिखा। उसने तंदूर से पूछा, "तंदूर-तंदूर! मुझे बताओ कि गिद्ध किधर गए?"

तंदूर बोला, "पहले तुम मेरे द्वारा पकाई हुई बाजरे की रोटी खाओ, तब तुम्हें बताऊँगा।"

घहुँह, बाजरे की रोटी तो मेरे घर में मेरी भैंसें खाती हैं। मैं नहीं खाती तुम्हारी बाजरे की रोटी।" लड़की बोली।

"तब फिर मैं भी तुम्हें कुछ नहीं बताता।" तंदूर ने कहा।

लड़की फिर आगे दौड़ चली। कुछ दूर आगे चलकर उसे एक जंगली बेर का पौधा दिखाई दिया। लड़की बोली, "बेर के पेड़, बेर के पेड़! मुझे यह बता दो कि गिद्ध किधर गए हैं?"

"पहले मेरी टहनियों पर लगे बेर खाओ, फिर बताऊँगा।" बेर के पेड़ ने कहा।

"मैं तो देसी बेर भी नहीं खाती और तू मुझे जंगली बेर खाने को कह रहा है।" लड़की ने मुँह बिचकाते हुए कहा।

"तो फिर जा, मैं भी नहीं बताता कि गिद्ध किधर गए हैं।" बेर का पेड़ बोला, "जाकर अपने आप तलाश कर ले।"

लड़की फिर आगे दौड़ने लगी। कुछ दूर आगे उसे मट्ठे की एक नदी मिली, जिसके किनारे मक्खन के बने थे। लड़की ने पूछा, "मक्खन के किनारे वाली मट्ठे की नदी, मुझे यह बताओ कि गिद्ध मेरे भाई को किधर ले गए हैं?"

"पहले मेरे मक्खन के साथ मट्ठा पिओ, तब बताऊँगी।" नदी ने कहा।

घहुँह, मैं तो घर में सिर्फ दूध पीती हूँ, जिसमें मलाई तैरती रहती है। तेरा मट्ठा मैं क्यों पीऊँ?" लड़की बोली। इस पर नदी ने भी उसे गिद्धों का पता नहीं बताया।

लड़की शाम तक जंगलों और मैदानों में दौड़ती रही। शाम होने पर ज्यों ही उसने अपने घर लौटना चाहा,

अचानक दूर उसे एक नाचती हुई झोंपड़ी नजर आई। वह झोंपड़ी के पास पहुँची। झोंपड़ी के अंदर एक चुड़ैल बैठी हुई थी, जो अपना शॉल काढ़ रही थी। पास ही लड़की का नन्हा भाई सो रहा था।

"नमस्ते दादी," लड़की ने कहा। उसे क्या पता था कि वह एक चुड़ैल है। तभी चुड़ैल ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और बड़े प्यार से पूछा, "तुम कौन हो और यहाँ क्यों आई हो?"

"बस जरा कपड़े पसीने से भीग गए थे, उन्हें सुखाने के लिए ही इधर चली आई।" लड़की ने चालाकी से काम लेते हुए कहा।

"ठीक है। कोई बात नहीं।" चुड़ैल बोली, "तुम कपड़े सुखा लो और कपड़े सूख जाएँ तब यह शॉल काढ़ना। मैं अभी गुसलखाने में नहाकर आती हूँ।" कहकर वह चुड़ैल झोंपड़ी के पिछवाड़े की ओर चली गई।

लड़की वहीं बैठकर अपने कपड़े सुखाने लगी और फिर शॉल काढ़ते हुए यह सोचने लगी कि बुढ़िया से अपने भाई के बारे में क्या कहेगी और उसे कैसे यहाँ से ले जाएगी?

तभी अचानक वहाँ एक छोटा सा नेवला आ पहुँचा, उसने लड़की से कहा, "चुड़ैल गुसलखाने में अपना छुरा तेज करने के लिए गई है। वह तुम्हें और तुम्हारे भाई को मारकर आग में भूनकर खा जाएगी।"

यह सुनकर लड़की डर के मारे रोने लगी। नेवले ने फिर कहा, "तुम जल्दी से अपने भाई को लेकर यहाँ से भाग जाओ।"

लड़की अपने भाई को गोद में लेकर भाग निकली। इस बी" चुड़ैल कभी-कभी खिड़की के पास आती और पूछती, "लड़की, तू शॉल काढ़ रही है?"

तब नेवला जवाब देता-घहाँ दादी, काढ़ रही हूँ।"

गुसलखाने में आग जलाकर चुड़ैल जब लड़की को लेने के लिए आई तो उसने देखा कि झोंपड़ी खाली है। यह देख चुड़ैल चिल्ला उठी, "उड़ जाओ मेरे गिद्धो, पकड़ लाओ उन दोनों भाई-बहनों को। मैं भी खाऊँगी उनको और तुम सब भी मजे से खाना।"

अपने नन्हे भाई को उठाकर लड़की भागती-भागती मट्ठे वाली नदी के किनारे पहुँची, जिसमें मक्खन तैर रहा था।

"नदी, मेरी प्यारी नदी! हम दोनों को छुपा लो।" लड़की ने प्रार्थना की।

"पहले मेरा मट्ठा पीना पड़ेगा।" नदी ने कहा।

मरती क्या न करती। लड़की ने जल्दी से मट्ठा पिया। नदी ने खुश होकर लड़की और उसके भाई को अपने मक्खन के ढेर में छुपा लिया। गिद्ध उन्हें देख नहीं सके और उड़ते-उड़ते आगे निकल गए।

लड़की अपने नन्हे भाई को लेकर आगे बढ़ी। तब तक गिद्ध लौटने लगे थे। उन्होंने लड़की और उसके भाई को

देखा तो वे उनकी ओर बढ़े। लड़की भाई को लेकर दौड़ी चली जा रही थी। वह तब तक जंगली बेर के पेड़ तक पहुँ" चुकी थी।

"बेर के पेड़, बेर के पेड़, मुझे छिपा लो।" लड़की ने प्रार्थना की।

"छुपा लूँगा किंतु मेरा जंगली बेर तुम्हें खाना पड़ेगा।" बेर के पेड़ ने कहा।

मजबूरी थी, लड़की ने झट से एक बेर तोड़कर खा लिया। तब बेर के पेड़ ने उसे अपने पत्तों और टहनियों के बी" छिपा लिया। गिद्ध उसे देख नहीं पाए और आगे बढ़ गए।

लड़की ने फिर से अपने भाई को उठाया और लगी दौड़ने। वह घर के काफी पास पहुँ" चुकी थी, किंतु तभी गिद्धों ने उसे देख लिया। उसे देखकर गिद्धों ने अपने पंख फड़फड़ाना और चीखना शुरू कर दिया।

लड़की की आँखों में आँसू आ गए। वह अपने भाई को गोद में उठाए भागी चली जा रही थी कि तभी उसे सामने तंदूर नजर आ गया।

"तंदूर, मेरे अच्छे तंदूर हम लोगों की मदद करो। हमें कहीं छिपा दो।" लड़की तंदूर के सामने गिड़गिड़ाई।

"पहले तुम्हें मेरी बाजरे की रोटी खानी पड़ेगी।" तंदूर ने कहा। न चाहते हुए भी लड़की ने नाक-भौं सिकोड़कर बाजरे की रोटी खाई। तंदूर ने खुश होकर उसे अपने अंदर छिपा लिया। पर गिद्धों ने उनको तंदूर में छिपते हुए देख लिया था। वे उसके ऊपर चीखते हुए मँडराने लगे।

तंदूर गुस्से के मारे गरम होने लगा। उधर गिद्धों ने और जोर से चीखना शुरू कर दिया और वे तंदूर के मुँह के बिलकुल करीब आकर मँडराने लगे।

तंदूर ने लड़की से कहा, "जैसे ही मैं 'भागो' कहूँ, तुम अपने भाई को लेकर भाग जाना।"

लड़की ने कहा, "ठीक है। मैं ऐसा ही करूँगी।"

कुछ देर के बाद तंदूर ने कहा, "भागो।" लड़की ने जैसे ही तंदूर से बाहर कदम रखा, खूब जोर से तंदूर की आग भभकी। उसकी भयानक लपटें चारों तरफ फैल गइऔ। गिद्ध आग की लपटों में झुलस गए और जमीन पर गिरकर तड़प-तड़पकर मर गए। लड़की अपने भाई को लेकर सुरक्षित अपने घर पहुँ" गई।

शाम को जब उसके माता-पिता मवेशी चराकर घर लौटे तो लड़की ने उन्हें सारा वाकया सुनाया। सुनकर पहले तो लड़की के माता-पिता ने उसे मीठी झिड़की दी, फिर कहा, "बेटी, कभी किसी को छोटा नहीं समझना चाहिए। हर चीज की अपनी-अपनी उपयोगिता होती है। अब देख लो, उस जंगली बेर, मट्ठे की नदी और तंदूर के आगे तुम्हें अपनी जान बचाने के लिए कैसे गिड़गिड़ाना पड़ा। तुम पहले ही उनसे सहयोग करतीं तो तुम्हें इतनी मुसीबतें न उठानी पड़तीं। वे भी तुम्हें भरपूर सहयोग देकर तुम्हारी मदद करते। अब भविष्य के लिए इस सीख को याद रखना।"

लड़की ने सहमति में सिर हिला दिया।

❑

ईमानदारी का प्रतिफल

किसी गाँव में अर्जुन नाम का एक निर्धन युवक रहता था। निर्धनता के कारण वह ज्यादा पढ़ भी नहीं पाया था। वह बस कामचलाऊ हिसाब-किताब कर लेता था। अर्जुन निर्धन तो बेशक था, किंतु वह बहुत ईमानदार था। उसका व्यवहार भी सबके साथ बहुत मधुर था, इसलिए गाँव के सभी लोग उसका आदर करते थे।

एक बार वह नौकरी की तलाश में समीप के एक महानगर में गया। वहाँ और कोई खास नौकरी तो उसे नहीं मिली, एक सेठ की दुकान में साफ-सफाई करने का काम मिल गया। वह प्रतिदिन नियम से समय पर दुकान पर आता और सेठ की लंबी-चौड़ी दुकान में झाड़ू-पौंछा लगाकर उसे साफ कर दिया करता। उसे जब भी खाली समय मिलता, कोई-न-कोई किताब लेकर पढ़ने बैठ जाता, पढ़ता भी और साथ ही लिखता भी। उसका लेख बहुत सुंदर था। एक दिन अकस्मात् ही सेठजी की नजर उसे कुछ लिखते देखकर उस पर पड़ गई। सेठजी उसके समीप पहुँचे और कहा-घअरे अर्जुन! तू तो लिखना-पढ़ना भी जानता है।"

अर्जुन बोला, "हाँ सेठजी, थोड़ा-बहुत लिख-पढ़ लेता हूँ।"

उस दिन से सेठ ने उसे चिट्ठियाँ लिखने के काम पर लगा लिया।

अर्जुन खूब परिश्रम से बना-सँवारकर चिट्ठियाँ लिखने लगा। उसके लिखने का, विषय को प्रस्तुत करने का ढंग बहुत ही सुंदर था। चिट्ठी में हिसाब-किताब की बात आती, तो वह उसे भी खूब अच्छी तरह समझाकर लिखता था।

सेठजी ने एक दिन उसका लिखा एक ऐसा ही पत्र देखा, तो बोले, "भई वाह! कैसा समझाकर उत्तर लिखा है तुमने; तो तुम हिसाब-किताब रखना भी जानते हो?"

"जी, थोड़ा-बहुत जानता हूँ।" अर्जुन ने विनम्रता से उत्तर दिया।

सेठजी को अर्जुन का व्यवहार बहुत पसंद आया। उन्होंने उसे मुनीम के पद पर नियुक्त कर दिया। अर्जुन ने मुनीमगीरी के कार्य में भी अपनी दक्षता दिखा दी तो सेठ ने उसे मुख्य मुनीम बना दिया। यह देखकर दूसरे मुनीम उससे ईर्ष्या करने लगे। वे सोचने लगे कि यह कल-परसों का आया छोकरा, जिसे मालिक ने झाड़ू लगाने के काम पर रखा था, अब हमसे भी बड़ा मुनीम बन गया है।

ईर्ष्या करने का यह अवगुण हम सबके अंदर विद्यमान है। किसी व्यक्ति ने तीन मंजिल मकान बना लिया तो हम उसे देखकर रात-दिन जलते रहते हैं। बिना आग के जलते रहते हैं। ये मुनीम भी जलने लगे। दूसरी तो कोई बात उन्हें सूझी नहीं, सोचा, सेठजी के कान भरेंगे, इसकी निंदा करेंगे, तो नए मुनीम की गद्दी छिन जाएगी। परंतु अर्जुन के अंदर वे कोई बुराई न निकाल सके।

अर्जुन सेठ के ही एक मकान में रहता था। दो कमरे थे। एक कमरा बंद रहता था, एक खुला हुआ। प्रतिदिन जाने से पहले वह उस बंद कमरे में जाता, फिर थोड़ी देर के बाद बाहर निकल आता। ताला बंद करके चाबी जेब में रखकर दुकान पर आ जाता और प्रात: से रात्रि तक अपना काम करता रहता।

ईर्ष्या करनेवालों को ऐसी कोई बात नहीं मिली, जिसे वे सेठजी से कहे। तभी किसी ने उसे दुकान पर आने से पूर्व उस बंद कमरे में जाते देखा। उसे संदेह हुआ कि वह इस कमरे में क्यों जाता है? उसको बंद करके क्यों रखता है?

बस सेठजी के कान भरे जाने लगे, "यह बड़ा मुनीम बेईमान है। यह रुपया खा जाता है, हिसाब में गड़बड़ करता है।" उन्होंने सेठ से यहाँ तक कह डाला कि यह अर्जुन किसी दिन सेठजी का दिवाला निकाल देगा।

सेठजी ने सुना तो बोले, “मैं ऐसे नहीं मानूँगा। मुझे पता है कि अर्जुन बहुत ईमानदार आदमी है। तुम लोग उससे ईर्ष्या करते हो, इसीलिए उसके विरुद्ध ऐसा कह रहे हो।”

एक दिन अर्जुन अपना काम समाप्त करके घर पहुँचा तो प्रतिदिन की तरह वह उस बंद कमरे में गया। उसने कमरा अंदर से बंद कर लिया। दूसरे मुनीमों ने उसे ऐसा करते देखा तो वे दौड़े-दौड़े सेठजी के पास पहुँचे। बोले, “चलिए सेठजी, चोर पकड़ा गया। वह बेईमान अर्जुन इस समय अपने चुराए हुए रुपयों को कमरा बंद करके अंदर बैठा गिन रहा है। हमारे साथ चलिए, हम अभी उसकी चोरी पकड़वा देंगे।”

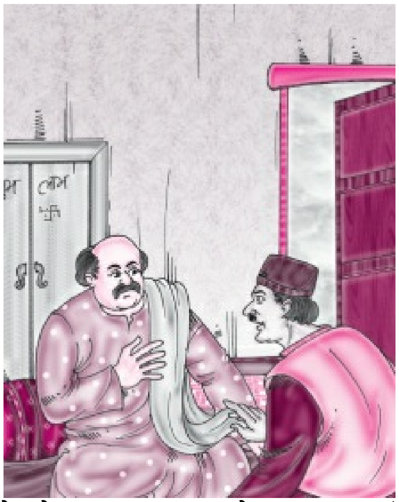

सेठजी तुरत-फुरत अर्जुन के घर पहुँचे। देखा, सचमु” कमरे का द्वार अंदर से बंद है। वे गरजकर बोले, “कौन है अंदर? दरवाजा खोलो।”

अर्जुन ने अंदर से आवाज लगाई, “यह मैं हूँ, सेठ जी-अर्जुन।”

मुनीमों ने जलती आग को और हवा दी, बोले, “देखिए न सेठजी, हमारी बात गलत तो नहीं थी।”

सेठजी ने क्रुद्ध होकर पूछा, “अंदर क्या कर रहे हो? दरवाजा खोलो।”

अर्जुन ने उत्तर दिया, “मैं कोई विशेष काम नहीं कर रहा हूँ, सेठजी। थोड़ी सी प्रतीक्षा कीजिए, अभी दरवाजा खोलता हूँ।”

सेठजी चिल्लाए, “अभी, इसी समय दरवाजा खोलो, नहीं तो मैं दरवाजा तुड़वा दूँगा।”

अर्जुन ने दरवाजा खोल दिया। सेठ और दूसरे मुनीम धड़धड़ाते हुए उस कमरे में प्रवेश कर गए। उन्होंने देखा कि कमरे में विशेष कुछ नहीं था। सारा कमरा खाली पड़ा था सिवाय एक साधारण से संदूक के।

“इस संदूक में क्या है?” सेठ ने पूछा।

अर्जुन जल्दी से संदूक पर बैठ गया और हाथ जोड़कर बोला, “अन्नदाता, यह मत पूछिए। संदूक बंद ही रहने दीजिए।”

मुनीमों ने कहा, “इसी में तो सबकुछ है, सेठजी। इसीलिए यह इसे खोलने नहीं दे रहा है।”

“क्या है इसमें? खोलो, हम देखेंगे।” सेठ ने कहा।

अर्जुन ने बैठे-बैठे ही कहा, “इसमें कुछ नहीं है, अन्नदाता। इसे मत खुलवाइए। इसमें आपके काम की कोई चीज नहीं है।”

“चलो हटो। हम इसे अवश्य देखेंगे।” सेठ ने कुछ क्रोधित स्वर में कहा।

अर्जुन की आँखों में आँसू आ गए। वह धीरे से उठा और एक ओर हो गया। सेठ ने अपने हाथ से संदूक खोला।

अंदर दृष्टि डाली तो आश्चर्य से चौंक उठे। बोले, “यह सब क्या है?”

संदूक में एक फटी धोती, एक मैला सा कुरता और टूटी हुई पुरानी चप्पलें रखी हुई थीं।

साथ गए मुनीमों ने उन वस्तुओं को देखा। कोई भी इनका अर्थ न समझ सका। अर्जुन ने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर भूमि की ओर देखते हुए कहा, “अन्नदाता, ये वे वत्र हैं, जिन्हें पहनकर कई वर्ष पहले मैं इस नगर में आया था और आपकी सेवा में उपस्थित हुआ था। आपसे नौकरी देने की प्रार्थना की थी और आपने कृपा करके मुझे दुकान में झाड़ू लगाने की नौकरी दी थी। आपकी उस कृपा को मैं भूल न जाऊँ, अपनी वास्तविकता को भूल न जाऊँ, मेरे ह्रदय में अभिमान न जाग उठे, इसलिए मैं प्रतिदिन प्रात:काल और सायं को दुकान पर जाते और आते समय अपने इन वत्रों को देखता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभो, मुझे अभिमान से बचा और मुझे शक्ति दे कि मैं अपने अन्नदाता की सेवा अधिक-से-अधिक परिश्रम और ईमानदारी के साथ कर सवूँक्त।”

सेठजी ने जब यह बात सुनी तो उनकी आँखों में आँसू आ गए। चुगली करनेवालों के चेहरों पर कालिख पुत गई। वे शरम से जमीन में गड़ गए। सेठजी ने आगे बढ़कर अर्जुन को अपनी छाती से लगा लिया। बोले, “तुम धन्य हो अर्जुन, तुम्हारी तरह सब लोग ऐसा करें तो दुनिया से पाप का नामोनिशान ही मिट जाए, क्योंकि अभिमान ही पाप का मूल है।”

उन दिन से सेठ का विश्वास अर्जुन पर और भी दृढ़ हो गया। चुगली करनेवाले मुनीमों ने भी अर्जुन से ईर्ष्या करना छोड़ दिया। वे समझ गए कि अब उन्होंने अर्जुन के विरुद्ध सेठजी से कोई शिकायत की, तो उनका पत्ता कटते देर नहीं लगेगी। तब से वे भी ईमानदारी से काम करने लगे।

❑

संगत का फल

विष्णु भगवान् के भक्तों में नारदजी का स्थान बहुत ऊँचा है। दिन-रात हाथ में वीणा लिये विष्णु भगवान् की महिमा गाते हुए वह तीनों लोकों में विचरण करते रहते हैं।

एक दिन नारदजी के मन में एक जिज्ञासा पैदा हुई, जिसके निराकरण के लिए वह भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने विष्णुजी से पूछा, "प्रभु, कृपया मुझे यह बताएँ कि संतों के साथ रहने का क्या फल होता है?"

नारदजी का प्रश्न सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराए, फिर बोले, "नारद, पृथ्वी पर कंटकाकीर्ण नाम का एक जंगल है। उसमें बबूल के एक सूखे वृक्ष पर एक गिरगिट रहता है। वही गिरगिट आपके प्रश्न का उत्तर देगा।" नारदजी पृथ्वी पर उतरकर कंटकाकीर्ण नाम वाले जंगल को खोजते हुए वहाँ पहुँचे। बड़ी देर खोजने के बाद उन्हें जंगल में वह बबूल का वृक्ष मिला, जिस पर एक गिरगिट बैठा हुआ था। नारदजी ने नीचे खड़े होकर उस गिरगिट की ओर देखते हुए कुछ ऊँचे स्वर में पूछा, "क्यों भाई गिरगिट, क्या तुम बता सकते हो कि संतों के सत्संग से क्या फल मिलता है?"

गिरगिट ने नारद का प्रश्न नहीं सुना। नारदजी ने अपना प्रश्न फिर दोहराया, मगर गिरगिट तो हिला तक नहीं। तीसरी बार भी प्रश्न करने पर जब गिरगिट ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो नारदजी को विष्णु भगवान् पर बड़ी खीझ हुई। फिर भी चलते-चलते चौथी बार भी उन्होंने गिरगिट से अपना प्रश्न दोहराया।

नारदजी का प्रश्न पूरा भी नहीं हुआ कि वह गिरगिट बबूल की शाख से नीचे आ गिरा और कुछ देर तड़पकर मर गया। इस पर नारद झल्लाते हुए भगवान् विष्णु के पास जा पहुँचे और कहने लगे, "भगवन्, उस गिरगिट ने मेरे प्रश्न का उत्तर तो दिया नहीं, उलटे उसकी हत्या का पाप मेरे सिर पर और चढ़ गया।"

भगवान् विष्णु ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा, "नारद, इसमें "बराने की कोई आवश्यकता नहीं। जो आदमी सत्य को जानना चाहता है, उसे कोई न कोई जोखिम तो उठाना ही पड़ता है।"

नारदजी बोले, "जो हुआ, सो हुआ। अब मेरे प्रश्न का उत्तर तो दीजिए।" इस बार भगवान् विष्णु ने नारद को पृथ्वी पर पन्नग नाम वाले एक दूसरे जंगल में जाने को कहा। उन्होंने नारद को बताया कि उस जंगल में आम के एक वृक्ष पर हीरामन नाम का एक तोता बैठा है, वही आपके प्रश्न का उत्तर देगा। हारकर नारद पन्नग नामक जंगल में जा पहुँचे। वह जगह ढूँढ़ने में उन्हें दो महीने लग गए। आखिर उन्हें एक आम की डाल पर बैठा हीरामन तोता दिख गया।

पेड़ के नीचे खड़े होकर नारदजी ने पूछा, "क्यों भाई हीरामन, क्या तुम बता सकते हो कि संतों के सत्संग का क्या फल होता है?" तोते ने नहीं सुना। वह अपनी टें-टें में मस्त था। नारदजी ने जब अपना प्रश्न दोहराया, तो तोता चुप हो गया। उसने अपनी गरदन टेढ़ी करके नीचे नारद की ओर देखा। नारदजी ने तीसरी बार फिर वही प्रश्न किया। तभी वह तोता आम की डाल से नीचे आ गिरा और जमीन पर गिरते ही उसके प्राण निकल गए।

नारदजी लौटकर पुन: भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान् विष्णु से कुछ रोष भरे स्वर में कहा, "भगवान्, बजाय इसके कि आप मेरे प्रश्न का उत्तर देते, आपने मुझे दो-दो हत्याओं का भागी बना दिया, जिनके प्रायश्चित्त के लिए अब न जाने कितने दिनों तक मुझे तपस्या करनी पड़ेगी।"

विष्णु भगवान् बोले, "नारदजी, एक बार आप और कोशिश कीजिए। राजा सेश्वर की घुड़साल में श्यामकर्ण नाम का एक नया घोड़ा पैदा हुआ है। उसे आपके प्रश्न का उत्तर मालूम है। जाइए, देर मत कीजिए। वह घोड़ा आपके प्रश्न का उत्तर अवश्य देगा।"

विष्णु के बहुत कहने पर नारदजी पृथ्वी पर सेश्वर नाम के राजा का पता करने पहुँचे। लगभग छह महीने पृथ्वी पर भटकने के बाद नारदजी सेश्वर नाम के राजा का पता निकाल सके। राजा की घुड़साल में बहुत से नौकर थे, इसलिए नारदजी ने रात को दीवार फाँदकर घुड़साल में जाने का निश्चय किया।

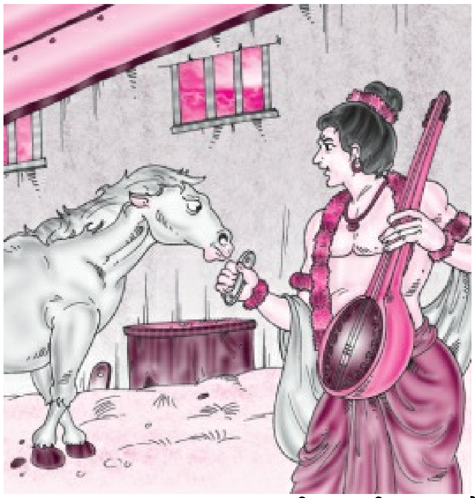

रात के समय जब सब तरफ सन्नाटा छाया हुआ था, नारदजी अपनी माया से दीवार फाँदकर घुड़साल के भीतर पहुँचे। वहाँ बँधे अपनी छोटी उम्र और कानों के काले रंग के कारण नारदजी ने पहचान लिया कि प्रभु ने इसी घोड़े के बारे में बताया था। दबे पाँव नारद उस घोड़े के पास पहुँचे और उसके एक कान के पास फुसफुसाए, "क्यों भई श्यामकर्ण, संतों के सत्संग का क्या फल होता है?" बछेड़ा (घोड़े का बच्चा) ने अपना कान बी" में ही हिला दिया। अब नारद ने उसके दूसरे कान में भी अपना वही सवाल दोहराया। नारद द्वारा ऐसा करते ही एकाएक वह बछेड़ा जोर से काँपा और भूमि पर गिर पड़ा। पलक झपकते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

नारदजी भयभीत होकर वहाँ से भाग छूटे। उन्हें भगवान् विष्णु पर बहुत क्रोध आया। बैकुंठ धाम में पहुँचकर उन्होंने विष्णु भगवान् को बहुत भला-बुरा कहा, बोले, "प्रभु, आप क्यों बार-बार हत्याओं का दोष मेरे सिर मढ़ रहे हैं। आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते, तो मत दीजिए, किंतु बार-बार मुझे हत्याओं का दोषी तो मत बनाइए।"

भगवान् विष्णु ने किसी तरह नारद के क्रोध को शांत किया और बोले, "नारदजी, बस आप अंतिम बार एक कष्ट और उठा लीजिए। पृथ्वी पर चंद्रवक्ष नामक प्रतापी राजा के घर एक पुत्र पैदा हुआ है। आप उसके पास जाइए। वह निश्चय ही आपके प्रश्न का उत्तर दे देगा।"

नारदजी बोले, "ना बाबा ना, मैं उसके पास नहीं जाऊँगा। अगर वह राजकुमार भी कहीं गिरगिट, हीरामन और श्यामकर्ण घोड़े की तरह मर गया तो वह राजा मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा।"

विष्णुजी ने कहा, "ऐसा कुछ नहीं होगा, नारदजी। आप जाइए तो।"

बहुत डरे-डरे नारदजी आखिर चंद्रवक्ष राजा के राजमहल में पहुँचे। राजा ने नारद को बड़े आदर के साथ बिठाया, उनकी खूब सेवा की। नारद ने राजकुमार को देखना चाहा। राजा उन्हें राजमहल में ले गया। नारद ने राजकुमार का मस्तक छूकर उसे आशीष दी, फिर उसके गाल को चूमने के बहाने राजकुमार के कान में फुसफुसाकर पूछा, "ओ नवजात राजकुमार, संतों के सत्संग का क्या फल होता है?" यह सुनते ही राजकुमार पैर मारकर चीख उठा। नारदजी तुंत उठकर वहाँ से भाग लिये। उन्होंने सोचा कि अभी यह राजकुमार मर जाएगा और राजा मुझे पकड़वा लेगा।

वह कुछ ही दूर भागकर पहुँचे थे कि पीछे से राजा के कर्मचारियों ने उनका पीछा करते हुए उन्हें पुकारना शुरू

कर दिया, "ओ मुनिराज, ठहरिए।" नारद जी भागते-भागते चिल्लाए, "मैंने कुछ नहीं किया, मैं निर्दोष हूँ, मुझे जाने दो।" लेकिन राजा के सेवकों ने आगे बढ़कर नारद का रास्ता रोक ही लिया। उन्होंने कहा, "मुनिराज, तनिक रुकिए तो, डरिए मत। हम आपको पकड़ने के लिए नहीं, राजकुमार के कहने पर आपको सम्मानपूर्वक महल में वापस लेने के लिए आए हैं। हमारा राजकुमार आपको बुला रहा है।"

नारदजी वापस महल के भीतरी कक्ष में लाए गए। राजकुमार ने नारद से पूछा, "मुनिवर, क्या प्रश्न था आपका? तनिक फिर से तो पूछिए।"

नारदजी बेहद डरे हुए थे। बोले, "कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं तो बस यह जानना चाह रहा था कि ये जो साधु-संत होते हैं, इनकी संगत करने का क्या फल मिलता है?"

यह सुनकर राजकुमार ने कहा, "हे देवर्षि, आप तो ब्रह्मज्ञानी हैं। अब आपसे क्या छिपाऊँ? इससे तीन जन्म पहले मैं एक गिरगिट था, जंगल में एक बबूल के सूखे पेड़ पर रहता था। मेरा सौभाग्य कि चार पल के लिए आप मेरे जीवन में आए। आपका दर्शन पाकर मैं गिरगिट की योनि से मुक्त हो गया। उसके बाद अगले जन्म में मैं एक तोता बना। तब भी मेरे सौभाग्य से आप तीन पल के लिए मेरे जीवन में आए और आपका दर्शन पाकर मुझे उस योनि से भी मुक्ति मिल गई।

पिछले जन्म में मैं श्यामकर्ण नाम का एक घोड़ा बना। मगर मेरा भाग्य देखिए कि पिछले जन्म में भी आप दो पल के लिए मुझे मिल ही गए। यह उसी का परिणाम है कि आज मैं एक राजा के पुत्र के रूप में पैदा हुआ हूँ।"

यह सुनते ही नारदजी की आँखों में हर्ष के आँसू छलक आए। भगवान् विष्णु की महिमा गाते हुए वह संतुष्ट होकर खुशी-खुशी अपने प्रभु के पास लौट गए। उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल चुका था।

❑

सूरत और सीरत

पहले समय में किसी गाँव में चरिया नाम का एक बौना रहता था। वह बहुत ही नाटा था। देखने में भी बदसूरत था, लेकिन एक कला में उसे निपुणता प्राप्त थी। वह किसी भी हाथी को अपने कौशल से अपने काबू में कर लेता था। जो व्यापारी वहाँ के राजा को हाथी बेचने आया करते थे, उन्हें चरिया से बहुत मदद मिलती थी।

एक बार वहाँ के राजा ने स्वयं उसका कौशल देखा। हाथी को वश में करने की उसकी कला को देखकर राजा बहुत खुश हुआ। उसने कहा, "चरिया, मुझे इस बात पर गर्व है कि तुमने मेरे राज्य में जन्म लिया है। जिस प्रकार पूर्ववर्ती काल में महाराज नल घोड़ों को साधने में माहिर थे, उसी प्रकार तुम भी हाथियों को अपने वश में करने की कला में पारंगत हो। आज से मैं तुम्हें अपनी गजशाला के रख-रखाव की जिम्मेदारी सौंपता हूँ। चलकर मेरे हाथियों की देखभाल करो।"

बस, उस दिन से बौना चरिया राजा के हाथियों की देखभाल करने वाला प्रधान अधिकारी बन गया। अब उसे किसी बात की कोई कमी नहीं रही। बहुत से नौकर-चाकर अब उसके अधीन काम करते थे और उसके साथ बड़ी इज्जत से पेश आते थे। इतना सबकुछ होते हुए भी चरिया को अपने नाटे होने का गम सताता रहता था। वह हमेशा इस गम में घुलता रहता था कि ईश्वर ने उसे बौना क्यों बनाया?

राजा ने जब यह देखा कि चरिया हमेशा उदास और उत्साहहीन बना रहता है तो एक दिन उसने चरिया को अपने दरबार में बुलाया और उससे पूछा, "चरिया, राजदरबार में तुम ऊँचे पद पर नियुक्त हो। हाथियों पर काबू पाने की सामर्थ्य के कारण सब तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, फिर भी तुम चुस्त और संतुष्ट नहीं दिखते। मेरा विचार है कि तुम्हें जीवन में एक साथी की जरूरत है। तुम जल्दी से अपना विवाह कर लो।"

बौना फीकी हँसी हँसाकर बोला, "महाराज, आपकी कृपा से मुझे अच्छी नौकरी मिल गई है, यह आपका मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है। पर क्षमा कीजिए, शादी करने की सलाह देकर आप मेरा उपहास कर रहे हैं। भला बताइए तो, कौन लड़की मुझ बौने के साथ विवाह करना पसंद करेगी?"

राजा बोला, "मैं तुम्हारा उपहास नहीं कर रहा हूँ, चरिया। यह सत्य है कि हर व्यक्ति की तरह तुम्हें भी एक जीवन-साथी की जरूरत है। रही लड़की मिलने की बात, तो मैं तुमसे वादा करता हूँ कि तुम्हारी शादी किसी सुंदर लड़की से करवा दूँगा।"

बौने ने राजा को प्रणाम किया और वहाँ से चला आया। राजा ने चरिया की शादी कराने का वादा तो कर लिया, लेकिन फिर वह सो" में पड़ गया। स" ही तो कहा था चरिया ने। कौन उस बौने और बदसूरत व्यक्ति को अपनी लड़की देना पसंद करेगा? संयोग से कोई व्यक्ति ऐसा करने के लिए तैयार भी हो गया, तो जो लड़की चरिया से विवाह करेगी, उसमें अवश्य ही बड़े ही त्याग की भावना होनी चाहिए। बहुत सोच-विचार के बाद राजा ने यह घोषणा करवाई कि जो भी लड़की बौने चरिया से विवाह करेगी, उसके पिता को महाराज जहाँ वह चाहे वहाँ जमीन देंगे और रहने के लिए "र व धन भी देंगे।

घोषणा सुनकर कई लड़कियों के पिता अपनी-अपनी कन्याएँ लेकर राजा के पास पहुँचे। राजा ने उन सबमें से तीन लड़कियों का चुनाव किया। उनमें से दो लड़कियाँ तो सामान्य नैन-नक्श वाली थीं, तीसरी लड़की चरिया की तरह बौनी थी।

राजा ने तीनों लड़कियों को अलग-अलग बुलवाया और पूछा, "मैं यहाँ का राजा हूँ, इसलिए तुम्हें किसी से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम निर्भीक होकर अपने विचार व्यक्त करो कि तुमने चरिया के साथ विवाह करना मंजूर किसलिए किया है?"

पहली लड़की बोली, "अन्नदाता, मेरी सौतेली माता मुझे प्रतिदिन बहुत सताती है। मेरे पिता उसके गुलाम बने हुए हैं। मेरी विमाता एक बूढ़े के साथ मेरी शादी करने के प्रयास में लगी हुई है। आपकी घोषणा ने उसमें एक नई आशा जगा दी। उसे लगा, मानो ईश्वर ने खुश होकर उसे यह अवसर प्रदान किया है। कुछ भी हो महाराज, मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हूँ।"

"मान लो, अगर मैं तुम्हारे लिए किसी अच्छे दूल्हे का चयन कर दूँ तो क्या तुम उस बौने से शादी नहीं करोगी?" राजा ने पूछा।

राजा के इस प्रश्न का उत्तर उस लड़की ने बड़ी विरक्ति के साथ दिया। बोली, "मैं राजाज्ञा का पालन करूँगी। निर्णय आपके हाथ में है।" अब आई दूसरी लड़की की बारी। राजा के पूछने पर उसने बताया, "अन्नदाता, मेरा पिता बहुत ही गरीब है। हम तीन बहनें हैं। मैं सबसे बड़ी हूँ। मेरे बाद मेरी दो बहनों की शादियाँ होनी हैं। घोषणा के अनुसार मैं शादी करूँगी तो मेरे पिता को धन मिल जाएगा। उस धन से मेरा परिवार सुखी रह सकेगा। इसी दृष्टि से मैंने यह संबंध स्वीकार किया है।"

सबसे अंत में राजा ने बौनी लड़की से कहा, "सुनो बालिके, मैं यहाँ का राजा हूँ। मुझे यह अधिकार है कि मैं जो चाहूँ वह कर सकता हूँ। मैं चाहूँ तो बौने चरिया का विवाह किसी सुंदर लड़की से भी करवा सकता हूँ। तुम्हारे बारे में मुझे छूट है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तुम्हारा विवाह राज्य के सुंदर से सुंदर युवक के साथ करवा सकता हूँ और वह भी बड़ी धूमधाम के साथ।

मैं नहीं चाहता कि चरिया जैसे बौने और कुरूप व्यक्ति के साथ तुम्हारा विवाह हो। तुम तो यह बात जानती ही हो कि सुंदरता के आगे व्यक्ति की अच्छाई, अक्लमंदी, कौशल आदि का कोई मूल्य नहीं है। बोलो, क्या तुम अब भी बौने चरिया के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो?"

राजा की बात सुनकर बौनी लड़की ने झुककर अपने बौने हाथों से राजा को प्रणाम किया और कहा, "राजन, अपनी आज्ञा से आप कामदेव जैसे सुंदर युवक से मेरा विवाह तो अवश्य करवा सकते हैं, किंतु आप हमारे दिलों को तो नहीं मिला सकते हैं न? पद के मुताबिक तो मैं चरिया के योग्य पत्नी नहीं हूँ, फिर भी मैं उसका पूरा ध्यान रखूँगी। उसकी इच्छाओं के अनुरूप ही आचरण करूँगी। उसकी धर्मपत्नी कहलाने का पूरा प्रयास करूँगी, यह मेरा वादा है।"

बौनी लड़की की बातों से राजा बहुत खुश हुआ। दूसरे दिन उसने चरिया को बुलाया और कहा, "चरिया, जो लड़की तुम्हारे पद को प्रधानता देती है, जिसकी दृष्टि में तुम्हारा बौनापन भी उसके सम्मुख भुलाया जा सकता है। क्या वह लड़की तुम्हें पसंद है? मेरी इच्छा उस बौनी लड़की के साथ तुम्हारा विवाह करवाने की है, क्योंकि उसके विचार बहुत ही उत्तम हैं। वह तुम्हारे विचारों का आदर करेगी और तुम्हारे कहने के अनुसार ही चलेगी। सच्चे अर्थों में वह तुम्हारी जीवन-संगिनी बनकर रहेगी। अगर तुम उससे विवाह नहीं करना चाहते और तुम्हारी इच्छा बाकी की दोनों लड़कियों में से किसी के साथ विवाह करने की है, तो तुम बिना हिचक उनमें से किसी को भी अपनी जीवन-संगिनी के रूप में चुन सकते हो।"

बौने ने बिना हिचकिचाए बौनी लड़की के साथ अपनी शादी की इच्छा व्यक्त कर दी। राजा ने बड़ी धूमधाम से उन दोनों की शादी करवा दी। उसने बाकी की दो लड़कियों की शादी के विषय में भी विचार किया और उचित वर देखकर उन दोनों लड़कियों का विवाह भी राजकोष के खर्च से करवा दिया।

ठीक ही निर्णय था चरिया का। व्यक्ति को हमेशा दूसरे व्यक्ति की सीरत देखनी चाहिए, उसकी सूरत नहीं।

❑

अहंकार का फल

सत्युग में सुप्रतीक नामक एक पराक्रमी राजा थे। उनकी पत्नी का नाम विद्युतप्रभा था। दुर्वासा ऋषि के आशीर्वाद से उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने रखा-दुर्जय। राजकुमार दुर्जय धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। बली तो वह था ही, शत्र-संचालन में भी उसने जल्द ही निपुणता प्राप्त कर ली। सभी तरह से योग्य देख राजा ने उसे राज्यभार सौंप दिया और स्वयं पत्नी सहित चित्रकूट पर्वत पर तपस्या करने लगे।

राजा बनते ही दुर्जय ने अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाना शुरू कर दिया। उसने पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। एक समय ऐसा भी आया कि वह एक विशाल राज्य का सम्राट् बन गया और धीरे-धीरे उसमें अहंकार घर करने लगा।

एक दिन सम्राट् दुर्जय अपने सैनिकों के साथ शिकार खेलने वन में गया। वहाँ उसने एक सुंदर सरोवर देखा। सम्राट् दुर्जय को वह स्थान बहुत प्रिय लगा। सरोवर के पास ही एक कुटिया थी, जिसमें गौमुख नामक ऋषि रहते थे। सम्राट् दुर्जय एवं उनके सैनिकों को देख ऋषि गौमुख ने उसका खूब आदर-सत्कार किया। दुर्जय ने ऋषि से वहाँ रात्रि-विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। सम्राट् दुर्जय की बात सुन ऋषि गौमुख प्रसन्न तो हुए, लेकिन साथ ही वह चिंतित भी हो उठे। दरअसल, उनके पास न तो उनको ठहराने की उपयुक्त व्यवस्था थी और न ही पर्याप्त भोजन सामग्री।

ऋषि गौमुख इसी चिंता में परेशान थे कि तभी उन्हें भगवान् नारायण का ध्यान आया। ध्यान करते ही भगवान् वहाँ आ गए। उन्होंने ऋषि को चिंतामणि देते हुए कहा, "ऋषिवर, आप इस चिंतामणि को रखिए, यह आपको आवश्यकतानुसार सभी चीजें उपलब्ध कराएगी।" ऋषि ने चिंतामणि ले ली और फिर एक भव्य स्वर्ण-महल की कामना की। कुटिया के स्थान पर तत्काल स्वर्ण महल साकार हो गया। ऋषि ने दुर्जय से कहा, "महाराज, आप अपने सैनिकों सहित महल में चलिए। भोजन करने का समय हो गया है।" सम्राट् दुर्जय एवं उसके सैनिक जैसे ही महल में पहुँचे, आश्चर्य से उनकी आँखें फटी-की-फटी रह गइऔ। ऐसा सुंदर महल उन्होंने कभी नहीं देखा था।

ऋषि गौमुख ने पुन: चिंतामणि से भोजन की कामना की। तत्काल भोजन भी आ गया। ऋषि ने सभी को स्नेह से भोजन करवाया। ऐसा स्वादिष्ट भोजन उन्होंने जीवन में कभी नहीं चखा था। रात्रि विश्राम उन्होंने उसी महल में किया। सुबह जब दुर्जय एवं उसके सैनिक वापस जाने लगे, तो स्वर्ण-महल स्वत: ही गायब हो गया। यह देख सभी आश्चर्य में पड़ गए। दुर्जय ने जिज्ञासावश पूछा, "ऋषिवर, आपने इतनी अच्छी व्यवस्था इतनी जल्दी कैसे कर ली? क्या आपके पास कोई चमत्कारी चीज है?"

"हाँ, यह सब प्रबंध चिंतामणि का कमाल है। यह चिंतामणि मुझे स्वयं भगवान् ने दी है। इससे जो माँगा जाता है, वही चीज मिल जाती है।" ऋषि गौमुख ने बताया।

"क्या यह चिंतामणि मुझे नहीं मिल सकती, ऋषिवर?" सम्राट् दुर्जय ने पूछा।

ऋषि ने चिंतामणि देने से इनकार कर दिया। सुनकर दुर्जय का क्रोध भड़क उठा। वह हर स्थिति में चिंतामणि को पाना चाहता था। अहंकारी तो वह था ही। उसने ऋषि को धमकी दी, "तुम मेरी शक्ति को नहीं जानते। या तो तुम चिंतामणि दो, अथवा प्राण त्यागने को तैयार हो जाओ।" दुर्जय का इतना कहना था कि तभी एक चमत्कार हुआ। चिंतामणि में से सहसा असंख्य वीर योद्धा प्रकट हुए और वे ऋषि की ओर से दुर्जय एवं उसके सैनिकों पर टूट पड़े। ऋषि गौमुख ने व्याकुल हो प्रभु से प्रार्थना की, "हे प्रभु, इन दुष्टों का विनाश करो!" ऋषि का इतना कहना था कि भगवान् नारायण वहाँ आ गए। उन्होंने सम्राट् दुर्जय और उसके सैनिकों का पल भर में सर्वनाश कर दिया।

❑

जैसे को तैसा

दो दोस्त थे लँगोटिया यार, दाँत-काटी रोटी। संग उठते, संग बैठते। जहाँ जाते संग-संग जाते। एक का नाम था फँसाता सिंह। दूसरे का नाम था छुटाता सिंह। लेकिन फँसाता सिंह के जिम्मे कमाना था और छुटाता सिंह के जिम्मे खाना। एक बार दोनों साथ-साथ व्यापार करने चले। जाते-जाते दोनों चतुरपुर पहुँचे। चतुरपुर की सीमा के निकट सराय में दोनों ने डेरा डाला। छुटाता सिंह बोला, "दोस्त फँसाता सिंह, मैं तो यहीं पड़ा रहूँगा। मौज की छानूँगा, चैन की बंसी बजाऊँगा, तुम अपना व्यापार सँभालो।"

फँसाता सिंह अपने घोड़े पर सवार हो, चतुरपुर नगर में व्यापार की खोज में चला। एक थैली में उसने एक हजार अशरफियाँ डालीं और थैली घोड़े के जीन के साथ बाँध दी। नगर में घूम ही रहा था कि एक व्यक्ति ने पूछा, "क्यों भाई, घोड़ा बिकाऊ है?"

फँसाता सिंह बोला, "बिकाऊ तो है, पर कीमत ज्यादा है, तुम चुका नहीं पाओगे। कौन सा धंधा-रोजगार करते हो?"

वह बोला, "मेरा नाम कल्लन कसाई है। बकरियाँ काटता हूँ, गोश्त बेचता हूँ। पर आपको इससे क्या? घोड़े की कीमत बताइए। मेरे वश का होगा तो ले लूँगा, नहीं तो आपका घोड़ा आपके पास। ट-ट-ट कीजिए, आगे बढ़ जाइए।"

फँसाता सिंह बोला, "मेरे घोड़े की कीमत है पाँच" सौ अशरफियाँ।"

कल्लन बोला, "यूँ तो अच्छे से अच्छा अरबी घोड़ा भी सौ अशरफियों में आ जाता है, पर आपके घोड़े के लिए पाँच" सौ अशरफियाँ गिन दूँ।" फँसाता सिंह घोड़े से उतर गया। लेकिन जब जीन से अशरफियों की थैली खोलने लगा, तो कल्लन बोला, "यह जीन से क्या खोल रहे हो भाई?"

"अपनी अशरफियों की थैली निकाल रहा हूँ।"

"बस बस, चमड़े के हाथ, दमड़ी की बात जरा परे ही रखना। मियाँ घोड़ा बिक चुका है और बिकते समय यह शर्त तय नहीं हुई थी कि घोड़े पर से सामान उतार लिया जाएगा।" और कल्लन ने घोड़े की लगाम खीं" ली। घोड़ा लेकर वह चला गया। फँसाता सिंह चिल्लाया, "लानत है, इस नगर को। व्यापार में भी जबरदस्ती और धोखेबाजी चलती है।"

कल्लन चिल्लाया, "मियाँ, यह चतुरपुर है! चतुरपुर। चतुरपुर की हर चीज में चतुराई चलती है।"

फँसाता सिंह अपना सा मुँह ले सराय लौटा तो छुटाता सिंह ने पूछा, "माता-पिता को श्रीखंड-साल, लाल दुशाल लगे तो बरसों हो गए, अब किसका मातम बना रहे हो?"

फँसाता सिंह ने सारी कहानी बताई और कहा, "भाई छुटाता सिंह, गाँठ की जमा-पूँजी गँवा बैठा हूँ, अब भला क्या व्यापार करूँगा इस चतुरपुर में? चल, भैया किसी और नगर में चलें।"

"सियार के भौंकने से गाँव नहीं छोड़ा जाता।" छुटाता सिंह बोला, "खैर, तुमने व्यापार करके वर्षों तक मुझे चुपड़ी खिलाई है, अब मुझे पच्चीस अशरफियाँ दे दो, मैं व्यापार करूँगा।"

फँसाता सिंह बोला, "जब तुम्हें व्यापार करना ही है तो ये पाँच" सौ अशरफियाँ ले जाओ, पच्चीस अशरफियों से क्या व्यापार करोगे?"

"पाँच" सौ अशरफियों से व्यापार फँसाता सिंह ही कर सकते हैं, छुटाता सिंह के लिए तो पच्चीस ही बहुत हैं।"

पच्चीस अशरफियाँ पल्ले बाँध छुटाता सिंह चतुरपुर नगर की ओर चला। नगर में पहुँ" छुटाता सिंह सीधा कल्लन कसाई के पास पहुँचा। कल्लन दुकान पर बैठा कीमा बना रहा था। दुकान में बकरियों के चार-पाँच" सिर टँगे हुए थे। दुकान की ऊपरी मंजिल में कल्लन के बाल-बच्चे बरामदे में बैठे हुए थे।

छुटाता सिंह ने पूछा, "कल्लन मियाँ, सिर क्या भाव दिए?"

"भाव क्या बस, अशरफी सिर है।" कल्लन बोला।

"हर सिर अशरफी का है।"

"हाँ।"

"हर सिर अशरफी में दोगे?"

"हाँ।" कल्लन ने कहा।

"तो पच्चीस सिर देना।" छुटाता सिंह अशरफियाँ गिनते हुए बोला।

"बकरी के सिर तो चार-पाँच" ही है। मैं पच्चीस कहाँ से लाऊँ? ये पाँच हैं, पाँच" अशरफियाँ गिनिए, पाँच" सिर ले जाइए।" कल्लन बोला।

"लेकिन मुझे तो पूरे पच्चीस सिर चाहिए। बकरी के ही सिर हों, यह कोई जरूरी नहीं। सौदा तो हरेक सिर का तय हुआ है। ऊपर बरामदे में कितने ही बैठे हुए हैं, पहले उनके सिर उतारकर लाओ, मुझे तो पच्चीस सिर चाहिए।"

अब कल्लन मियाँ "बराए। हाथ जोड़ने लगे। माफी माँगने लगे कि गलती हो गई, माफ कर दीजिए। भविष्य में ऐसी मूर्खता कभी नहीं होगी।

"चतुरपुर में तो 'मूर्खता' का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। यहाँ की तो हर चीज में चतुराई होती है। खैर, मैं क्या जानूँ कि तुम मूर्ख भी हो या नहीं। मुझे तो बस पच्चीस सिर चाहिए। पच्चीस सिर पूरे करके दे दो, तो मैं परदेशी आदमी अपनी मंजिल तय करूँ।" छुटाता सिंह हँसकर बोला।

अब तो कल्लन छुटाता सिंह के पाँवों में गिर गया, "बस, बस, अब मैं समझ गया। कल जिससे मैंने घोड़ा लिया था, आप उन्हीं के दोस्त हैं। आप अपना ले जाइए और अपनी अशरफियाँ भी। मेरी, मेरे बाल-बच्चों की जान बख्श दीजिए।"

छुटाता सिंह घोड़ा और हजार अशरफियाँ लेकर वापस सराय में लौट आया।

❑

उन्नति का रोड़ा

एक राजा ने अपने मंत्री से कहा, "महामंत्री, बहुत दिनों से मेरा विचार बन रहा है कि राज्य के कुछ योग्य प्रजाजनों को सम्मानित करके उन्हें कुछ बड़ा उपहार दिया जाए। आप मुझे बताइए और सुझाइए कि ऐसे व्यक्ति कहाँ और किस प्रकार ढूँढ़े जाएँ?"

इस पर सूझ-बूझ वाले मंत्री ने तनिक सोचकर कहा, "महाराज, सतपात्रों की तो आपके राज्य में कोई कमी नहीं है, परंतु आज सभी वर्गों के लोगों में एक भारी कमी है। वे परस्पर सहयोग करने की अपेक्षा एक-दूसरे की टाँग खिंचाई में लगे रहते हैं, दूसरों की प्रगति में रोड़ा अटकाते हैं। ऐसी दशा में मुझे तो लगता नहीं कि आपकी उदारता को फलित होने का अवसर मिलेगा।"

राजा को अपने मंत्री की बात कुछ अटपटी सी लगी, वे बोले, "मंत्री, तुम्हारी यह बात बिलकुल सही हो सकती है। पर इसे बिना प्रमाण के मैं कैसे मान लूँ? इस विषय में यदि तुम्हारे पास कोई ठोस प्रमाण हो तो बताओ।"

महामंत्री ने राजा की बात मान ली। उसने अपने कथन को प्रत्यक्ष कर दिखाने की एक योजना बनाई। राजा ने योजना को स्वीकृति दे दी। योजना के अनुसार एक आठ फुट गहरा गड्ढा इतनी चौड़ाई के साथ खुदवाया गया कि उसमें एक साथ कम-से-कम २०-२५ व्यक्ति खड़े हो सवेंक्त। ऐसे २० पात्रों को चुनकर, जो सम्मान के योग्य समझे गए, गड्ढे में छोड़ दिया गया, साथ ही घोषणा कर दी गई कि जो भी इस गड्ढे से निकलकर ऊपर आ जाएगा, उसे महाराज अपने राज्य का एक चौथाई हिस्सा पुरस्कार में देंगे। बस फिर क्या था, सभी व्यक्ति जी-जान से सबसे पहले गड्ढे में ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करने लगे। जो भी सफल होता दिखता, पुरस्कार हाथ से जाने के भय से दूसरे उसे वापस गड्ढे में खीं" लेते। सवेरे से आरंभ हुई प्रतियोगिता बिना परिणाम के समाप्त हो गई। पुरस्कार किसी को नहीं मिला।

महामंत्री के कथन और लोगों की ऐसी प्रवृत्ति देखकर राजा को घोर आश्चर्य हुआ।

मंत्री ने राजा से कहा, "महाराज, यदि इन लोगों में एकता ही होती, तो सहारा देकर किसी एक को ऊपर चढ़ा सकते थे; परंतु वे ईर्ष्या और लालचवश ऐसा नहीं कर सके और पुरस्कार से वंचित रह गए।"

❑❑❑